Business Studies

कक्षा-XII

क्र.सं.	*नाम*	*पद*
1.	**सविता दराल**	*प्रधानाचार्या* सर्वोदय कन्या विद्यालय माता सुन्दरी रोड, नई दिल्ली-110002
2.	**श्री श्रुति बोध**	*उपप्रधानाचार्य* रा. उ. मा. बाल विद्यालय सिंधू, दिल्ली
3.	**कुमकुम कुमार**	*उपप्रधानाचार्य* सर्वोदय कन्या विद्यालय यू ब्लॉक मंगोलपुरी, दिल्ली
4.	**श्री ईश्वर सिंह**	*पी. जी. टी (कॉमर्स)* आर. पी. वी. वी, नरेला, दिल्ली - 110040
5.	**निखत इस्लाम**	*पी. जी. टी (कॉमर्स)* सर्वोदय बाल विद्यालय राउज़ रवेन्यू दिल्ली 110002
6.	**श्री विनोद कुमार**	*पी. जी. टी (कॉमर्स)* *रा. उ. मा. बाल विद्यालय* *माता सुन्दरी रोड, नई दिल्ली -2*

अध्याय 1

प्रबन्ध की प्रकृति एवं महत्व

प्रबन्ध को प्रभावशीलता एवं कार्यक्षमता से लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु कार्य कराने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस का उद्देश्य सर्वमान्य लक्ष्यों/उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किए जाने वाले प्रयासों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करना होता है।

प्रभावशीलता तथा कार्यक्षमता में अन्तर

(1) प्रभावशीलता गुणात्मक है जबकि कार्यक्षमता मात्रात्मक।

(2) सही कार्य करना प्रभावशीलता को दर्शाता है जबकि कार्यो को सही से करना कार्यक्षमता को दर्शाता है।

एक व्यवसाय के लिए दोनो ही आवश्यक होते है तथा इन में संतुलन बनाये रखना भी अनिवार्य है जिससे प्रबन्ध लक्ष्यों (प्रभावशीलता) को न्यूनतम संसाधनों (कार्यक्षमता) से प्राप्त कर सकें।

प्रबन्ध की विशेषताएँ/लक्षण

(1) प्रबन्ध लक्ष्य प्रधान प्रक्रिया है जो संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करती है।

(2) प्रबन्ध सर्वव्यापक है जो सभी प्रकार के संगठनों जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि के लिए आवश्यक होती है।

(3) प्रबन्ध बहुआयामी गतिविधि है जो कार्यो, व्याक्तियों तथा परिचालनो के प्रबन्ध से सम्बन्धित होती है।

(4) प्रबंध एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो तब तक चलती रहती है जब तक कि एक संगठन कुछ निर्धारित उद्देश्यों को पाने के लिए विद्यमान रहता है।

(5) प्रबन्ध एक सामूहिक गतिविधि है। एक संगठन में अनेक व्यक्ति संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते है। कोई भी प्रबन्धकीय निर्णय अकेले में नही लिये जा सकते है। उदाहरण के लिए, विपणन प्रबन्धक, वित्तीय प्रबन्धक से परामर्श करके ही साख सुविधा को बढ़ा सकता है। माल की आपूर्ति देने से पहले उत्पादन प्रबन्धक से परामर्श करना पड़ता है।

(6) प्रबन्ध एक गत्यात्मक कार्य है जिसे परिवर्तनशील वातावरण के अनुरूप कार्य करना पड़ता है।

(7) प्रबन्ध एक अदृश्य शक्ति है जिसे देखा नही जा सकता परन्तु इसके प्रभाव को प्राप्त परिणामों से निर्धारित किया जा सकता है।

प्रबन्ध के उद्देश्य

(1) संगठनात्मक उद्देश्य :-

(क) जीवित रहना जिसके लिए पर्याप्त आय अर्जित करना अनिवार्य है।

(ख) लाभ अर्जित करना ताकि लागतों एवं जोखिमों को सहन किया जा सके।

(ग) विकास करना ताकि भविष्य में संगठन ओर अच्छे प्रकार से कार्य कर सकें।

(2) सामाजिक उद्देश्य :- सामाजिक उद्देश्य संगठन के समाज के प्रति समर्पण से सम्बन्धित होते है। एक व्यावसायिक संगठन के सामाजिक उद्देश्य निम्नलिखित होते है :-

(क) उचित कीमत पर गुणवत्तापूर्ण वस्तुओं की आपूर्ति करना।

(ख) करों का ईमानदारी से भुगतान करना।

(ग) उत्पादन की पर्यावरण मित्र विधियों को अपनाना।

(घ) असामाजिक एवं अनुचित व्यापारिक व्यवहारों से बचना।

(ड़) कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक एवं अच्छी कार्यदशाएं उपलब्ध कराना।

(3) वैयक्तिक उद्देश्य :- ये उद्देश्य संगठन के कर्मचारियों से सम्बन्धित होते है। प्रबन्ध को कर्मचारियों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करना पड़ता है जैसे उचित पारिश्रमिक, सामाजिक आवश्यकताएं, व्यक्तिगत वृद्धि एवं विकास सम्बन्धि आवश्यकताएं। प्रबन्ध को वैयक्तिक एवं संगठनात्मक उद्देश्यों में समन्वय रखना चाहिए।

प्रबन्ध का महत्व

(1) प्रबन्ध सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करता है।

(2) प्रबन्ध कार्यक्षमता बढ़ाता है। इसके माध्यम से संसाधनों का उचित उपयोग सम्भव हो पाता है। जिससे लागतें कम होती है तथा उत्पादकता बढ़ती है।

(3) प्रबन्ध गत्यात्मक संगठन का सृजन करता है। यह परिवर्तनशील पर्यावरण की चुनौतियों का सामना आसानी से कर सकता है।

(4) प्रबन्ध वैयक्तिक उद्देश्यों को पाने में सहायता करता है। ये अभिप्रेरण एवं नेतृत्व के माध्यम से कर्मचारियों में समूह भावना का विकास करती है तथा व्यक्तिगत लक्ष्यों एवं संगठनात्मक लक्ष्यों में तालमेल बैठाता है।

(5) प्रबन्ध समाज के विकास में सहायता करता है यह गुणात्मक माल एवं सेवाओं को प्रदान करके, रोजगार के अवसर सृजित करके, उत्पादन की नई तकनीकें बनाकर समाज के विकास के लिए कार्य करता है।

प्रबन्ध की प्रकृति :- प्रबन्ध विज्ञान है या कला अथवा पेशा। कुछ विद्वान प्रबन्ध को कला बताते है क्योंकि प्रबन्धक ज्ञान एवं कौशल के व्यावहारिक प्रयोग से सम्बन्ध रखता है जबकि कुछ विद्वान इसे विज्ञान मानते है क्योंकि यह उचित रूप से जाँचे गये सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ इसे पेशा भी मानते है।

1) प्रबन्ध एक कला के रूप में :- कला की कुछ विशेषताएं होती है जोकि निम्नलिखित है।

(क) सैद्धान्तिक ज्ञान :- जिस के लिए क्रमबद्ध एवं संगठित अध्ययन सामग्री उपलब्ध होनी आवश्यक

है।

(ख) वैयक्तिक प्रयोग :- एक व्यक्ति दूसरें से भिन्न प्रकार से कार्य करता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य करने की शैली भिन्न होती है।

(ग) अभ्यास एवं सृजनशीलता पर आधारित :- कला में विद्यमान सैद्धान्तिक ज्ञान का सृजनशीलता अभ्यास समाहित होता है। एक कलाकार की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि उसने कितना अभ्यास किया है तथा वह कितना सृजनशील है।

प्रबन्ध में कला की सभी विशेषताऐं समाहित होती है अतः इसे कला कहा जा सकता है।

2) प्रबन्ध एक विज्ञान के रूप में :- विज्ञान किसी विषय का क्रमबद्ध ज्ञान होता है जो सही निष्कर्ष निकालने वाले निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित होता है, जिनकी जाँच की जा सकती है। विज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएं होती है।

(क) ज्ञान का क्रमबद्ध रूप जो सिद्धान्तों, अभ्यासों एवं प्रयोगों पर आधारित होता है।

(ख) प्रयोग एवं अवलोकल पर आधारित सिद्धान्त

(ग) सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत सिद्धान्त जिन्हें कही भी तथा कभी भी सिद्ध किया जा सकता है।

(घ) कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध। विज्ञान में सभी चरों का कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध होता है।

प्रबन्ध में भी सिद्धान्तों एवं नियमों का क्रमबद्ध रूप विद्यमान होता है जो संगठनात्मक अभ्यासों को समझनें में सहायक होते है। प्रबन्ध के अपने सिद्धान्त जो कारण एवं प्रभाव में सम्बन्ध स्थापित करते है परन्तु विज्ञान की तरह ये सिद्धान्त स्टीक नही होते इनमें परिस्थिति के अनुसार सुधार किया जा सकता है अतः प्रबन्ध विशुद्ध विज्ञान न हो कर सामाजिक विज्ञान है।

3. पेशें के रूप में प्रबन्ध :-

पेशा एक व्यवसाय है जो विशिष्ट ज्ञान और प्रशिक्षण द्वारा संपोषित होता है, जिसमें प्रवेश प्रतिबन्धित है।

इसकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है :-

(1) ज्ञान का सुपरिभाषित निकाय

(2) प्रतिबंधित प्रवेश

(3) सेवा उद्देश्य

(4) नीति संहिता का अस्तित्व

(5)पेशेवर संघो की उपस्थिति

प्रबन्ध के स्तर

उच्चस्तरीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य :- उद्देश्य निर्धारित करना, योजनाओं और नीतियों का ढांचा तैयार करना, एवं दूसरे लोगों के प्रयासों को निर्देशन और नेतृत्व प्रदान करना।

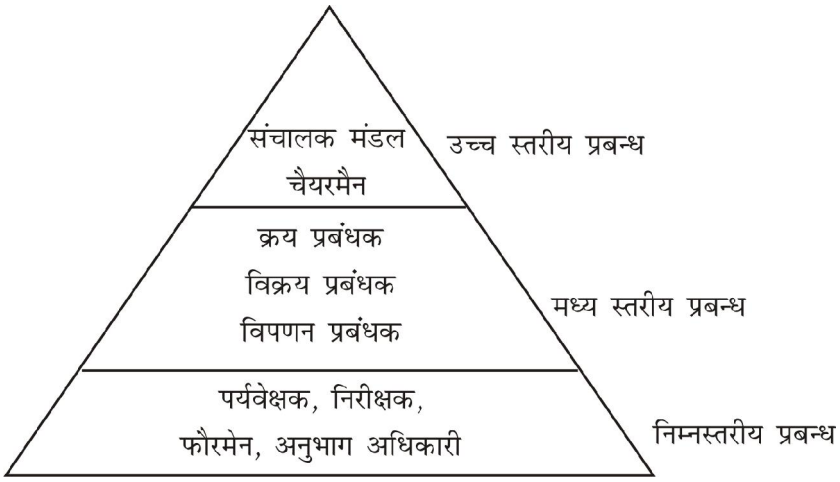

मध्य स्तरीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य :- उच्च स्तर द्वारा बनाई गई योजनाओं और नीतियों का निष्पादन करना। उच्च एवं निम्न स्तरीय प्रबन्ध के बीच कड़ी का कार्य करना। यह संसाधनों को एकत्रित एवं संगठित करते है।

निम्न स्तरीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य :- इस समूह के प्रबंधक वास्तव में उच्च और मध्य स्तरीय प्रबन्ध की योजनाओं के अनुसार क्रियाओं का निष्पादन करते हैं या कार्य करते है। उत्पादन की मात्रा, गुणवत्ता, श्रमिकों के बीच अनुशासन बनाएं रखने के लिए उत्तरदायी होते है।

प्रबन्ध के कार्य :- नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन एवं नियंत्रण।

(1) नियोजन :- ''क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है और किसके द्वारा किया जाएगा। इसके बारे में पहले से निर्णय करना।

(2) संगठन :- क्रियाओं को संगठित करना और योजनाओं के निष्पादन के लिए संगठन के ढाँचे को स्थापित करना।

(3) नियुक्तिकरण :- इसका अभिप्राय भर्ती करने, प्रवर्तन, वृद्धि इत्यादि का निर्णय करने, कार्य का निष्पादन, मूल्यांकन एवं कर्मचारियों का व्यक्तिगत रिकार्ड बनाए रखने से है।

(4) निर्देशन :- नियुक्ति के पश्चात कर्मचारियों को सूचना, मार्गदर्शन देना, प्रेरित करना, पर्यवेक्षण करना तथा उनके साथ सम्प्रेषण करना।

(5) नियन्त्रण :- वास्तविक कार्य निष्पादन की नियोजित कार्य निष्पादन के साथ मेल करना तथा अन्तर (यदि है तो) के कारणों का पता लगाकर शोधक मापो का सुझाव देना।

समन्वय :- एक शक्ति जो प्रबन्ध के सभी कार्यो को सुचारू रूप से चलाती एवं एक धागे में बांध कर रखती है।

समन्वय की प्रकृति एवं विशेषताएं :-

(1) समन्वय सामूहिक प्रयासों को एकत्रित रखता है।

(2) प्रयासों की एकात्मकता को सुनिश्चित करता है।
(3) सतत् प्रक्रिया है।
(4) सभी प्रबन्ध का उत्तरदायित्व है।
(5) एक व्यापक कार्य है।
(6) एक ऐच्छिक कार्य है।

1 अंक वाले प्रश्न

1. प्रबन्ध अदृश्य है। टिप्पणी कीजिए।
2. कुशलता से आप क्या समझते है?
3. प्रबन्ध के कोई दो महत्वपूर्ण पहलू लिखिए?
4. सफल होने के लिए एक संगठन को वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार अपने लक्ष्यों में परिवत्रन करना चाहिए। यह कथन प्रबन्ध की किन विशेषताओं को प्रदर्शित करता है?
5. प्रभावकारिता से आपका क्या तात्पर्य है?

3/4 अंक वाले प्रश्न

6. निम्न में संलग्न प्रबन्ध के स्तरों का नाम लिखिए।
(1) श्रमिकों की क्रियाओं का निरीक्षण करना
(2) मुख्य निर्णय लेना
(3) बाह्य संसार के साथ ताल मेल
(4) कर्मचारियों का चुनाव
7. कला के रूप में प्रबन्ध की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
8. प्रबन्ध को एक बहुमुखी कार्य क्यों माना जाता है?

5/6 अंक वाले प्रश्न

9. ''प्रबन्ध विज्ञान और कला दोनों है।'' इस कथन के सन्दर्भ में प्रबन्ध की प्रकृति की व्याख्या कीजिए?
10. ''उचित प्रबन्ध के आभाव का परिणाम समय, धन और प्रयास की क्षति होता है। इस कथन के सन्दर्भ में प्रबन्ध की व्याख्या कीजिए?

अध्याय 2

प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रबन्ध के सिद्धान्त आधारभूत सत्य का कथन होते है जो प्रबन्धकीय निर्णय एवं कार्यो हेतु मार्गदर्शन करते है। ये उन घटनाओं के अवलोकन एवं विश्लेषण के आधार पर बनाये जाते है जिनका प्रबन्धकों द्वारा वास्तविक कार्य व्यवहार में सामना किया जाता है। ये मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित होते है अत: ये विज्ञान के सिद्धान्तों से भिन्न होते है। ये प्रबन्ध की तकनीकों से भी भिन्न होते है। जहाँ तकनीकें कार्य करने के तरीकों से सम्बन्धित होती है वही सिद्धान्त कार्यो हेतु मार्गदर्शन करते है तथा निर्णयों में सहायक होते है।

प्रबन्ध के सिद्धान्तों की प्रकृति :-

1) ये सार्वभौमिक होते है क्योंकि इन्हें सभी प्रकार के संगठनों में प्रयोग किया जाता है।

2) ये कार्य करने के लिए दिशा निर्देश होते है परन्तु ये पूर्वनिर्मित समाधान नही बताते क्योंकि वास्तविक व्यावसायिक स्थितियाँ जटिल एवं गत्यात्मक होती है।

3) ये सिद्धान्त अनुभवों एवं तथ्यों के अवलोकन के आधार पर विकसित किए जाते है।

4) ये लोचशील होते है जिन्हें परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित करके प्रयोग किया जा सकता है।

5) इन की प्रकृति मुख्य रूप से व्यावहारिक होती है क्योंकि इनका उद्देश्य प्राणियों के व्यवहार को प्रभावित करना होता है।

6) इनके द्वारा कारण एवं प्रभाव में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तथा ये निर्णयों के परिणामों को बताते है।

7) ये आकस्मिक होते है जिनका प्रयोग विद्यमान परिस्थिति के अनुसार किया जाता है।

प्रबन्ध के सिद्धान्तों का महत्व

1) ये प्रबन्धकों को उपयोगी अन्तर्दृष्टि प्रदान करते है जिससे वे विवेकपूर्ण तरीके से प्रबन्धकीय निर्णय ले सकते है।

2) इनकी सहायता से संगठन के मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव होतो है।

3) ये प्रबन्धकों को व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप से समस्या समाधान के उपाय करने मे सक्षम बनाते है।

4) ये वातावरण की परिवर्तनीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते है।

5) ये व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में सहायता करते है।

6) ये प्रबन्धकीय प्रशिक्षण, शिक्षा एवं शोध हेतु आधार उपलब्ध कराते है।

टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध

एफ. डब्लयू टेलर (1856-1915) एक अमेरिकी इन्जीनियर थे जिन्होंने कार्य को करने के लिए वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित नियमों को अपनाने पर बल दिया। उन्होनें कार्य को सर्वोत्तम तरीके से करने की वैज्ञानिक विधि का अध्ययन किया जिससे कार्यक्षमता एवं उत्पादन बढे तथा लागत में कमी हो सके।

वैज्ञानिक प्रबन्ध ठीक से यह जानने की कला है कि आप अपने कर्मचारियों से क्या करवाना चाहते है तथा वे कैसे कार्य को सर्वोत्तम एवं न्यूनतम लागत पर करते है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त :-

1) विज्ञान, न कि अंगूठा टेक शासन :- इस सिद्धान्त के अनुसार निर्णय तथ्यों पर आधारित होने चाहिए न की अंगूठा टेक नियमों पर अर्थात् संगठन में किये जाने वाले प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक जाँच पर आधारित होना चाहिए न कि अन्तर्दृष्टि व निजी विचार।

2) मधुरता न कि विवाद :- इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्ध एवं श्रमिकों में विश्वास एवं समझदारी होनी चाहिए। उन्हें एक-दूसरे के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करनी चाहिए जिससे वे एक टीम के रूप में कार्य कर सके।

3) सहयोग न कि व्यक्तिवाद :- यह सिद्धान्त मधुरता, न कि विवाद का संशोधित रूप है। इसके अनुसार संगठन में श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के बीच सहयोग होना चाहिए जिससे कार्य को सरलता से किया जा सके।

4) अधिकतम कार्यक्षमता एवं श्रमिकों का विकास :- टेलर के अनुसार श्रमिकों का चयन कार्य की आवश्यकता के अनुसार क्षमता एवं योग्यता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए तथा उनकी कार्यक्षमता एवं कुशलता बढ़ाने हेतु उन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीके :-

(1) क्रियात्मक फौरमैनशिप :- इस का उद्देश्य विशेषज्ञ फोरमैन नियुक्त करके श्रमिकों के पर्यवेक्षण की गुणवत्ता बढ़ाना है। उनके अनुसार नियोजन को निष्पादन से अलग रखना चाहिए तथा नियंत्रण हेतु आठ फोरमैन होने चाहिए जिनमें से चार नियोजन विभाग तथा चार उत्पादन विभाग के अधिन होने चाहिए। इन सभी के द्वारा प्रत्येक श्रमिक का पर्यवेक्षण करना चाहिए जिससे श्रमिकों के कार्य की गुणवत्ता बढ़ सके।

(2) कार्य का मानकीकरण एवं सरलीकरण :- कार्य के मानकीकरण का आशय मानक उपकरणों, विधियों, प्रक्रियाओं को अपनाने तथा आकार, प्रकार, गुण, वचन, मापों आदि को निर्धारित करने से है। इससे संसाधनों की बर्बादी कम होती है तथा कार्य की गुणवत्ता बढ़ती है। कार्य को उत्पाद की अनावश्यक विविधताओं को समाप्त करके सरल बनाया जा सकता है।

(3) विधि अध्ययन :- यह एक कार्य को करने की विधियों से सम्बन्धित होता है। इसके अन्तर्गत

उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है जिससे कार्य को करने की सर्वोत्तम विधि का पता लगाया जा सके।

4) गति अध्ययन :- इसके अन्तर्गत कार्य को करने में कर्मचारी की गतियों का अध्ययन किया जाता है ताकि उनकी अनावश्यक गतियों को रोका जा सके।

5) समय अध्ययन :- यह तकनीक कार्य को करने में लगने वाले मानक समय का निर्धारण करने में सहायता करती है।

6) थकान अध्ययन :- इससे यह तय किया जाता है कि मध्यान्तर कितनी बार एवं कितने समय के लिए हो ताकि कर्मचारी उचित प्रकार से कार्य कर सके।

7) विभेदात्मक कार्य मजदूरी प्रणाली :- यह मजदूरी भुगतान की ऐसी विधि है जिसमें श्रमिकों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार भुगतान किया जाता है। मानक स्तर तक या अधिक कार्य करने वाले श्रमिकों को अधिक तथा मानक स्तर से कम कार्य करने वाले श्रमिकों को कम पारिश्रमिक मिलता है।

8) मानसिक क्रांति :- इसके द्वारा श्रमिकों व प्रबन्धकों की एक-दूसरे के प्रति सोच को बदलने पर जोर दिया गया हैं। जिससे संगठन में परस्पर विश्वास की भावना उत्पन्न हो सके तथा उत्पादन को बढ़ाया जा सके।

फेयोल के प्रबन्ध सिद्धान्त :-

फेयोल को आधुनिक प्रबन्ध सिद्धान्त का जनक माना जाता है इनके द्वारा प्रबन्ध के 14 सिद्धान्त दिए गए है जिन्हें सभी प्रकार के प्रशासनिक कार्यो तथा आर्थिक, वैज्ञानिक या राजनीतिक मानवीय गतिविधियों में सामान्य रूप से लागू किया जा सकता है। फेयोल द्वारा दिए गए 14 सिद्धान्त निम्नलिखित है।

(1) कार्य का विभाजन :- कार्य को छोटे-छोट भागों में बाँट कर, व्यक्तियों को उनकी योग्यता, क्षमता एवं अनुभवों के आधार पर दिया जाता है। बार-बार एक ही कार्य को करने से कर्मचारी उसमें विशिष्टा प्राप्त कर लेता है परिणामस्वरूप उसकी कार्यक्षमता बढ़ती है।

(2) अधिकार एवं उत्तरदायित्व :- प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व सह-सम्बन्धित है। अधिकार का आशय निर्णय लेने की शक्ति से है तथा उत्तरदायित्व का आशय कार्य के सम्बन्ध में दायित्व से है। उत्तरदायित्व , अधिकार का स्वाभाविक परिणाम है। पर्याप्त अधिकार देकर अधीनस्थों से कार्य को प्रभावी रूप से कराया जा सकता है।

(3) अनुशासन :- अनुशासन का आशय संगठन की व्यवस्थित कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए संगठन के नियमों का पालन करने से है। एक संगठन को उचित प्रकार से चलाने के लिए अनुशासन अत्याधिक आवश्यक होता है। यह कार्यक्षमता बढ़ाने में भी सहयोग करता है।

(4) आदेश की एकता :- इस सिद्धान्त के अनुसार अधीनस्थ को केवल एक वरिष्ठ से आदेश प्राप्त होने चाहिए तथा उसी के प्रति उसे जवाब देय होना चाहिए। इससे उत्तरदायित्व निर्धारण में भी सहायता

मिलती है।

(5) निर्देश की एकता :- यह सिद्धान्त कार्य की एकता तथा समन्वय को सुनिश्चित करता है। इसके अनुसार समान गतिविधियों को एक ही समूह में रखना चाहिए तथा उनके कार्य की एक ही योजना होनी चाहिए।

(6) सामूहिक हित से व्यक्तिगत हित का कम महत्व होना :- व्यावसायिक उद्यम व्यक्तिगत कर्मचारियों से अधिक महत्वपूर्ण होता है इसलिए व्यावसायिक संगठन के हित को व्यक्तियों के निजी हितों से ऊपर माना जाना चाहिए।

(7) कर्मचारियों का पारिश्रमिक :- इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को उचित वेतन दिया जाना चाहिए जिससे वे सन्तुष्ट हो सके तथा अधिकतम कार्य कर सके।

(8) केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण :- केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत महत्वपूर्ण निर्णय उच्च प्रबन्धकों द्वारा किए जाते है जबकि विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत निर्णय लेने का अधिकार निम्नस्तर तक फैला होता है। इनके बीच उचित संतुलन होना चाहिए।

(9) सोपान श्रृंखला :- यह प्राधिकार की रेखा है जो आदेश की श्रृंखला तथा संदेशवाहन की श्रृंखला के रूप में कार्य करती है। उच्च स्तर से दिये गये निर्देश तथा आदेश मध्य स्तर के माध्यम से निम्न स्तर पर पहुँचते हैं। इस श्रृंखला का उपयोग करने से संगठन में आदेश की एकता आती है तथा दोहरे आदेशों के भ्रम से छुटकारा मिलता है।

(10) उचित व्यवस्था :- इस सिद्धान्त के अनुसार सही कार्य पर सही व्यक्ति को होना चाहिए इससे कार्यक्षमता तथा संसाधनों का प्रभावी उपयोग होता है।

(11) समता :- कर्मचारियों के साथ न्याय, उदारता, मैत्रीपूर्ण एवं समानता का व्यवहार करना चाहिए जिससे इन का अधिकतम योगदान प्राप्त हो सके।

(12) कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व :- इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व होना चाहिए। उन्हें बार-2 पद से नही हटाया जाना चाहिए तथा उन्हें कार्य की सुरक्षा का विश्वास दिलाया जाना चाहिए ताकि उनका अधिकतम योगदान मिल सके।

(13) पहल :- पहल का आशय कोई कार्य किये जाने की आज्ञा लेने से पूर्व कुछ करने से लगाया जाता है। कर्मचारियों को सभी स्तरों पर सम्बन्धित कार्य के बारे में पहल करने की अनुमति होनी चाहिए। इससे वे प्रेरित एवं सन्तुष्ट होते है।

(14) सहयोग की भावना :- इसका आशय सामूहिक प्रयासों में तालमेल तथा परस्पर समझदारी से है। इससे कर्मचारियों में सुदृढ़ता आती है। इसे उचित संदेशवाहन एवं समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है।

टेलर तथा फेयोल के सिद्धान्तों में अन्तर

(1) टेलर ने मुख्य रूप से कार्य, श्रमिकों एवं पर्यवेक्षको के सम्बन्ध में सुझाव दिये है जबकि फेयोल ने प्रशासन या प्रबन्धकों की कार्यक्षमता के बारे में सुझाव दिये है।

(2) टेलर ने कार्य एवं उपकरणों के मानकीकरण पर अधिक बल दिया है जबकि फेयोल ने सामान्य प्रबन्ध के सिद्धान्तों तथा प्रबन्धकों के कार्यो पर अधिक बल दिया है।

(3) टेलर ने ''वैज्ञानिक प्रबन्धा'' पदों की अभिव्यक्ति की है जबकि फेयोल ने ''प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों'' की अभिव्यक्ति की है।

एक अंक वाले प्रश्न

(1) ''प्रबन्ध के सिद्धान्त विशुद्ध विज्ञान के सिद्धान्तों से भिन्न है'' कोई एक भिन्नता लिखिए।

(2) यह क्यों कहा जाता है कि प्रबन्ध के सिद्धान्त सार्वभौमिक है?

(3) थकान अध्ययन का क्या उद्देश्य है?

(4) वैज्ञानिक प्रबन्ध के दो सिद्धान्त बताइए?

(5) प्रबन्ध के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?

3/4 अंक वाले प्रश्न

(1) प्रबन्ध के निम्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए?

(क) समता (ख) कर्मचारियों का पारिश्रमिक

(2) आप के विद्यायलय में किताबों को ऑफिस, चोक को लाईब्रेरी तथा ऑफिस दस्तावेजों को स्टाफरूम में रखा जाता है। ये किस प्रकार विद्यालय के उद्देश्यों को प्राप्त करने को प्रभावित करेगा। यहाँ प्रबन्ध की कौन सी पद्धति का अनादर हो रहा है? आप उसे किस प्रकार ठीक करेगे।

5/6 अंक वाले प्रश्न

(1) टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध की दो तकनीकों का वर्णन करो।

(2) फंयोल के निम्न सिद्धान्तों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

(क) उचित व्यवस्था (ख) सोपान श्रृंखला

(ग) पहल (घ) समूह भावना

अध्याय 3

व्यवसायिक वातावरण

1. व्यवसायिक वातावरण का अर्थ :- शक्तियां, कारक और संस्थाएं जिनके साथ व्यवसायी को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करना पड़ता है। अर्थात वह वातावरण जिसमें व्यवसाय कायम रहता है।

व्यवसायिक वातावरण की श्रेणियां

(क) आर्थिक वातावरण :- (1) आर्थिक विकास, (2) मौद्रिक नीति, (3) आर्थिक प्रणाली

(ख) गैर आर्थिक वातावरण :- (1) सामाजिक वातावरण (2) राजनैतिक वातावरण (3) तकनीकी वातावरण

व्यवसायिक वातावरण की विशेषताएँ :-

(1) सभी बाह्य शक्तियां :- शक्तियां, संस्थाएँ और कारक जो व्यवसायिक संगठनों को प्रभावित करती है।

(2) विशिष्ट एवं सामान्य शक्तियां :- निवेश, उपभोक्ता प्रतियोगी

(3) पारस्परिक संबंध :- सभी शक्तियां और कारको का पारस्परिक संबंध

(4) गतिशील :- लगातार परिवर्तन

(5) जटिल :- वातावरण का विश्लेषण करना आसान होता है परन्तु जानना कठिन होता है।

व्यावसायिक वातावरण का महत्व :-

(1) प्रथम प्रस्तावक लाभ :- आरम्भिक स्तर पर व्यवसायिक वातावरण को समझना और उनका विश्लेषण कर लाभ उठाना।

(2) चेतावनी संकेत :- व्यावसायिक वातावरण की रूकावटों से चेतावनी संकेत प्राप्त करना।

(3) संसाधनों को एकत्रित करने और उनका उपयोग करने में सहायक

(4) नियोजन और नीति निर्माण में सहायक

(5) प्रगति में सुधार :- निरंतर विश्लेषण के साथ प्रगति में सुधार संभव

(1) आर्थिक वातावरण में सकल घरेलू उत्पाद, राष्ट्रीय स्तर पर आय का स्तर और प्रति व्यक्ति स्तर लाभ कमाने की दर, उत्पादकता और रोजगार दर, सरकार की औद्योगिक, मौद्रिक और राजकोषीय नीति इत्यादि।

व्यवसायिक वातावरण के आयाम

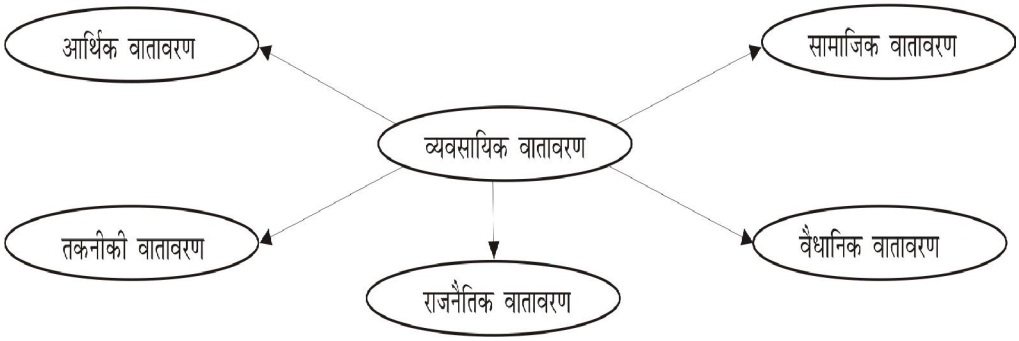

(2) सामाजिक वातावरण में समाज जिसमें व्यवसाय कायम है, के रीतिरिवाज और परम्पराएं अन्तर्निहित है। इसमें जहाँ व्यवसाय कायम है उस समाज में रहने वाले लोगों का जीवन स्तर, रूचि, प्राथमिकताएं और शिक्षा का स्तर शामिल है।

(3) तकनीकी वातावरण से अभिप्राय उत्पाद की गुणवत्ता सुधारने के लिए उत्पादन के ढ़ंग में होने वाले परिवर्तनों और नए उपकरणों और मशीनों के प्रयोग में होने वाले परिवर्तनों से है।

(4) राजनैतिक वातावरण में सरकार के कार्यो से संबंधित सभी घटक अन्तनिर्हित है जैसे कि सत्ता में सरकार का प्रकार, समाज के विभिन्न समूहों के प्रति सरकार का व्यवहार, विभिन्न सरकारों द्वारा लागू किए गए नीति परिवर्तन आदि।

(5) वैधानिक वातावरण में शामिल है :- विभिन्न कानून और वैद्यानिक अधिनियम, लाईसैंस से संबंधित, वैधानिक नीतियां, विदेशी व्यापार से संबंधित वैधानिक नीतियां, विज्ञापन पर निरीक्षण रखने के लिए कानून इत्यादि।

भारत में आर्थिक वातावरण :- के कारक है :- आर्थिक विकास का स्तर, आर्थिक ढाँचा, आर्थिक नीतियाँ, आर्थिक नियोजन, आर्थिक निदर्शक एवं आर्थिक संरचना।

नई आर्थिक नीति 1991 की मुख्य परिवर्तन या प्रभाव :-

(1) उदारीकरण :- से अभिप्राय लाइसेंस, अंश और कई और प्रतिबंधों और नियंत्रणों को हटाने से है जो 1991 से पहले उद्योगों पर लगाए गए थे। इससे कम्पनियों ने कीमतों को निश्चित करने में स्वतंत्रता, आयात और निर्यात में उदारीकरण, वस्तुओं और सेवाओं की गति में स्वतन्त्रता प्राप्त की।

(2) निजीकरण :- से अभिप्राय निजीक्षेत्र को अधिक भूमिका देने और सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को कम करने से है।

(3) वैश्वीकरण :- से अभिप्राय विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण से है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप व्यवसायिक उपक्रम के लिए भौतिक सीमाओं और राजनैतिक सीमाओं जैसी कोई रूकावट नही रही। संपूर्ण विश्व एक विस्तृत ग्राम बन गया है। वैश्वीकरण में विस्तृत अर्थव्यवस्था के

विभिन्न समूहों के बीच परस्पर आश्रय और संपर्क अन्तनिर्हित हुए है।

आर्थिक नीति में परिवर्तनों का व्यवसाय पर प्रभाव :-

(1) संरक्षित वातावरण की समप्ति

(2) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को खतरा

(3) चौ-तरफा प्रतियोगिता

(4) तीव्र परिवर्तनशील तकनीकी वातावरण

(5) परिवर्तन के लिए आवश्यकता

(6) बाजार उन्मुख

(7) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सहायता की क्षति

1 अंक वाले प्रश्न

1. किस औद्योगिक नीति में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के दरवाजे खोल दिये है? (औद्योगिक नीति - 1991)

2. किस वातावरण के अन्तर्गत रूचि, फैशन और प्रवृत्ति में परिवर्तन होते है? (सामाजिक वातावरण)

3. व्यवसाय और उद्योग पर सरकारी नीति में परिवर्तनों के किन्ही दो प्रभावों का वर्णन करे।

(1) प्रतिस्पर्धा में वृद्धि (2) विश्व स्तरीय तकनीक

(4) गुजरात में नैनो कार को पुनः स्थापित करना वातावरण के किस घटक को दर्शाता है?

(5) व्यवसायिक वातावरण के आयाम लिखिए?

3/4 अंक वाले प्रश्न

(6) ''वातावरण रूकावटें और अवसर प्रदान करता है''? एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट कीजिए?

(7) ''कम्पनियाँ जो अपने वातावरण को अपनाने में असफल रहती है, लम्बे समय तक कायम नही रहती है'' उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए?

(8) आर्थिक वातावरण सामाजिक वातावरण से अलग कैसे है?

5/6 अंक वाले प्रश्न

(9) बैंकिग क्षेत्रीय सुधार ने आसान उधार शर्ते और बेहतर सेवाऐं प्रदान की है। यह व्यवसायिक वातावरण के मुख्य घटकों में से एक का उदाहरण है। इस घटक का नाम लिखिए और संक्षिप्त में इसकी व्याख्या कीजिए।

(10) नई औद्योगिक नीति कब प्रस्तावित की गई? इसके पीछे मुख्य लक्ष्य क्या था? उस नीति की व्याख्या कीजिए?

अध्याय 4

नियोजन

अर्थ :- नियोजन पूर्व में ही यह निश्चित कर लेना है कि क्या करना है - कब करना है तथा किसे करना है। नियोजन हमेशा कहाँ से कहाँ तक जाना है के बीच का रिक्त स्थान को भरता है। यह प्रबन्ध के आधारभूत कार्यो में से एक है। इसके अन्तर्गत उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए एक कार्य-विधि का निर्माण किया जाता है।

नियोजन का महत्व :-

(1) नियोजन का निर्देशन की व्यवस्था करता है :- कार्य कैसे किया जाना है इसका पहले से ही मार्ग दर्शन करा कर नियोजन निर्देशन की व्यवस्था करता है।

(2) नियोजन अनिश्चितता के जोखिम को कम करता है। नियोजन एक ऐसी क्रिया है जो प्रबन्धकों को भविष्य में झांकने का अवसर प्रदान करती है।

(3) नियोजन अपव्ययी क्रियाओं को कम करता है:- नियोजन विभिन्न विभागों एवं व्यक्तियों के प्रयासों में तालमेल स्थापित करता है जिससे अनुपयोगी गतिविधियाँ कम होती है।

(4) नियोजन नव प्रवर्तन विचारों को प्रोत्साहित करता है नियोजन प्रबन्धकों का प्राथमिक कार्य है इसके द्वारा नये विचार योजना का रूप लेते है।

(5) नियोजन निर्णय लेने को सरल बनाता है :- प्रबन्धक विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करके उनमें से सर्वोत्तम का चुनाव करता है।

(6) नियोजन नियन्त्रण के मानकों का निर्धारण करता है :- नियोजन वे मानक उपलब्ध कराता है जिसके विरूद्ध वास्तविक निष्पादन मापे जाते है तथा मूल्यांकित किए जाते है। नियोजन के अभाव में नियन्त्रण अंधा है अत: नियोजन नियन्त्रण का आधार प्रस्तुत करता है।

नियोजन की विशेषताएं :-

(1) नियोजन का केन्द्र बिन्दु लक्ष्य प्राप्ति होता है :- नियोजन का कार्य उद्देश्य निर्धारण से शुरू होता है एक बार उद्देश्य निर्धारित हो जाये तो अगला कदम उन उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है।

(2) नियोजन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है :- नियोजन संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण की अगुवाई करता है यह प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यो के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

(3) नियोजन सर्वव्यापी है :- नियोजन सभी प्रकार के संगठनों तथा प्रबन्ध के सभी स्तरों पर आवश्यक है।

(4) नियोजन सतत् व अवतरित है :- नियोजन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है।

(5) नियोजन भविष्यवादी है :- नियोजन वर्तमान में यह निश्चित करता है कि भविष्य में क्या करना

है।

(6) नियोजन एक मानसिक अभ्यास है :- नियोजन में रचनात्मक सोच एवं कल्पनाशीलता होती है अत: यह एक मानसिक क्रिया है।

नियोजन की सीमाएँ :-

(1) नियोजन दृढता उत्पन्न करता है :- एक लक्ष्य को एक निश्चित समय में पाने के लिए योजनाएं तैयार की जाती है जो कि कार्य करने की विधि निर्धारित करती है इससे नियोजन में दृढ़ता आती है।

(2) परिवर्तनशील वातावरण में नियोजन प्रभावी नहीं रहता व्यवसायिक वातावरण परिवर्तनशील है यहां कुछ भी स्थायी नही है।

(3) नियोजन रचनात्मकता को कम करता है :- नियोजन उच्च प्रबन्ध द्वारा बनाई जाती है जो अन्य स्तरों की रचनातमकता को कम करता है।

(4) नियोजन में भारी लागत आती है :- धन एवं समय के रूप में नियोजन में ज्यादा लागत आती है।

(5) नियोजन नष्ट करने वाली प्रक्रिया है :- कभी कभी योजनाएँ तैयार करने में इतना समय लगता है कि उन्हें लागू करने के लिए समय नही बचता है।

(6) नियोजन सफलता का आश्वासन नहीं है।

नियोजन प्रक्रिया :-

(1) उद्देश्यों का निर्धारण :- नियोजन प्रक्रिया में पहला कदम उद्देश्यों का निर्धारण करना है। उद्देश्य पूरे संगठन या विभाग के हो सकते है।

(2) कार्यवाही की वैकल्पिक विधियों की पहचान :- उद्देश्य निर्धारण होने के बाद उन्हें प्राप्त करने के लिए विभिन्न विकल्पों की पहचान की जाती है।

(3) विकल्पों का मूल्यांकन :- प्रत्येक विकल्प के गुण व दोष की जानकारी प्राप्त करना। विकल्पों का मूल्यांकन उनके परिणामों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

(4) विकल्पों का चुनाव :- तुलना व मूल्यांकन के बाद संगठन के उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए बेहतरीन विकल्प चुना जाता है।

(5) योजना को लागू करना :- एक बार योजनाएं विकसित कर ली जाए तो उन्हें क्रिया में लाया जाता है।

(6) अनुवर्तन :- यह देखना की योजनाएं लागू की गई या नहीं। योजनाओं के अनुसार कार्य चल रहा है या नहीं।

नियोजन के प्रकार :-

(1) उद्देश्य :- नियोजन में सब से पहला कार्य उद्देश्यों का निर्धारण करना है। उद्देश्य प्रबन्ध का

वह गन्तव्य स्थान है जहाँ उसे भविष्य में पहुंचना है।

(2) व्यूह रचना :- व्यूह रचना से तात्पर्य है भविष्य के निर्णय जो लम्बे समय में संगठन के निर्देशन व विस्तार की व्याख्या करते है।

(3) नीति :- नीतियाँ सामान्य कथन है जो विचारों का मार्ग दर्शन अथवा एक विशिष्ट दिशा में अग्रसर होने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है विक्रय नीति के रूप में ''हम उधार विक्रय नहीं करते'' नीति का एक उदाहरण है।

(4) कार्य विधि :- कार्य विधि से तात्पर्य दैनिक गतिविधियों के संचालन से है।

(5) नियम :- विशिष्ट विवरण है जो बताते है क्या करना है उदाहरण धूम्रपान मना है'' एक नियम है।

(6) कार्यक्रम :- कार्यक्रम उद्देश्यों नीतियों, प्रक्रिया तथा नियमों का संयोग होते है। सभी योजनाएँ एक साथ मिलकर कार्यक्रम बनाती है।

(7) बजट :- बजट अनुमानित परिणामों का विवरण है जिन्हें भविष्य के निश्चित समय अंतराल के लिए गणितीय शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

(क) अतिलघु स्तरीय प्रश्न :- (1 अंक वाले प्रश्न)

(1) नियोजन को परिभाषित कीजिए।

(2) कार्यविधि से क्या अभिप्राय: है।

(3) नियम को परिभाषित कीजिए।

(4) बजट का अर्थ बताइये।

(5) नीति एवं कार्य विधि में एक अन्तर बताइये।

(6) प्रबन्ध का एक कार्य अन्य कार्य का आधार माना जाता है उस कार्य का नाम बताइये?

(7) नियोजन के किस प्रकार में प्रतियोगियों की चाल को ध्यान में रखा जाता है।

(8) ''कारखाने में धूम्रपान निषेध'' यह कथन योजनाओं के किस प्रकार से सम्बधित है।

(9) ''हम उधार विक्रय नहीं करते'' यह कथन योजनाओं के किस प्रकार से सम्बधित है।

(10) व्यूह रचना से क्या अभिप्राय है।

(ख) लघुस्तरीय प्रश्न :- (3/4 अंक वाले)

(11) ''नियोजन प्रबन्ध का हृदय है'' कैसे

(12) ''नियोजन के अभाव में नियन्त्रण अन्धा है? कैसे

(13) किस तरह नियोजन नियन्त्रण को आधार प्रदान करता है?

(14) नियम एवं नीतियों में अन्तर बताइयें?

(15) नीति एवं प्रक्रिया में क्या अन्तर है?

(ग) दीर्घस्तरीय प्रश्न (5/6 अंक वाले)

(16) किन्हीं चार प्रकार की योजनाओं का वर्णन कीजिए?

(17) प्रबन्ध के भरसंक प्रयासों के बावजूद कई बार नियोजन असफल क्यों हो जाता है?

(18) नियोजन संगठन को सही राह पर रखता है? इस संदर्भ में नियोजन का महत्व बताइये?

(19) नियोजन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

(20) नियोजन की सीमाओं का वर्णन कीजिए?

(21) नियोजन प्रक्रिया के चरणों की व्याख्या कीजिए?

अध्याय 5

संगठन

संगठन का अर्थ :- योजनाओं तथा उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात प्रबन्धकों द्वारा किया जाने वाला अगला कार्य संगठन करना होता है। संगठन कार्य यह निर्धारित करता है कि किन गतिविधियों तथा किन संसाधनों की आवश्यकता है तथा किस कार्य विशेष को कौन करेगा तथा इसे कहाँ किया जाएगा।

संगठन एक प्रक्रिया है जो कार्य को समझने तथा वर्गीकरण करने, अधिकार अंतरण को परिभाषित करने तथा मनुष्यों को अत्याधिक कार्य कुशलता के साथ, लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करने के लिए संबंध स्थापित करता है।

संगठन प्रक्रिया के चरण

(1) कार्य की पहचान तथा विभाजन :- इसमें पूर्व निर्धारित योजनाओं के अनुरूप किये जाने वाले विशिष्ट कार्यों की पहचान करना तथा उनका विभाजन करना होता है। कार्य का विभाजन करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सभी गतिविधियां संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु हों।

(2) विभागीकरण :- इसमें एक समान क्रियाओं को एक विशेष विभाग को सौंप दिया जाता है। जैसे -कच्चा माल क्रय करना, तैयार पुर्जे क्रय करना, आदि का क्रय विभाग, उत्पादन करना, माल का स्टॉक करना आदि क्रियाओं को उत्पादन विभाग को सौंपा जाता है।

(3) कर्त्तव्यों का निर्धारण :- विभागों के बन जाने के बाद प्रत्येक विभाग को जिसे विभागीय अध्यक्ष कहते हैं के आधीन किया जाता है। काम सौपते समय काम की प्रकृति तथा व्यक्ति की योग्यता का मिलान करना आवश्यक हैं।

(4) रिर्पोटिंग संबंध स्थापित करना :- जब दो या अधिक व्यक्ति एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करते है तो उनके मध्य संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जानी जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि कौन उसका अधिकारी तथा कौन अधीनस्थ है।

संगठन का महत्व :-

1. विशिष्टीकरण का लाभ :- संगठन के अंतर्गत सम्पूर्ण कार्यो को अनेक उपकार्यो में बाँट दिया जाता है। सभी उपकार्यो पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है जो एक ही कार्य को बार-बार करके उसके विशेषज्ञ बन जाते है।

2. कार्य संबंधो में स्पष्टता :- संगठन कर्मचारियों के मध्य संबंधों को स्पष्ट करता है। इससे स्पष्ट होता है कि कौन किसको रिपोर्ट करेगा।

3. संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग :- संगठन प्रक्रिया में कुल काम को अनेक छोटी-छोटी क्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया को करने वाला एक अलग कर्मचारी होता है परिणामत:

संगठन में उपलब्ध सभी संसाधनों का कुशलतम उपयोग होता है।

4. परिवर्तन में सुविधा :- संगठन प्रक्रिया एक संस्था को इस योग्य बना देती है कि वह कर्मचारियों के पद से संबंधित किसी भी परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेती है।

5. प्रभावी प्रशासन :- प्राय: देखा जाता है कि प्रबन्धकों में अधिकारों को लेकर भ्रम की स्थिति बनी रहती है। संगठन प्रक्रिया प्रत्येक प्रबन्धक द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं व प्राप्त अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख करती है।

संगठन ढाँचा :- संगठन प्रक्रिया जिस संरचना का सृजन करती है उसे संगठनात्मक संरचना कहते है। इसके अंतर्गत संगठन के अनेक पद स्थापित किये जाते हैं और सभी पदों पर कार्य करने वाले लोगों के सम्बन्धों को स्पष्ट कर दिया जाता है। संरचना द्वारा प्रबन्धकों व अन्य कर्मचारियों को कार्य के सम्बन्ध में एक आधार व रूपरेखा उपलब्ध करायी जाती है।

संगठन एक ढांचागत फ्रेमवर्क है जिसके अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं को समन्वित तथा एक दूसरे से संबंधित किया जाता है। **प्रबन्ध विस्तृति तथा संगठनात्मक ढांचे के बीच संबंध** प्रबन्ध विस्तृति से तात्पर्य अधीनस्थों की उस संख्या से है। जिनका अधिकारी कुशलता के साथ प्रबन्ध कर लेते है। प्रबन्ध की विस्तृति काफी हद तक संगठनात्मक ढ़ाचे को आकार देती है। यह ढांचे में प्रबन्ध के स्तरों को निश्चित करती है।

संगठनात्मक संरचना के प्रकार :-

(1) क्रियात्मक संगठन ढाँचा :- पूरी संस्था को उसके द्वारा की जाने वाली मुख्य क्रियाओं/कार्यो (जैसे उत्पादन, विपणन, खोज एवं विकास, वित्त आदि) के आधार पर विभक्त करने को कार्यात्मक संगठन ढाँचा कहते है।

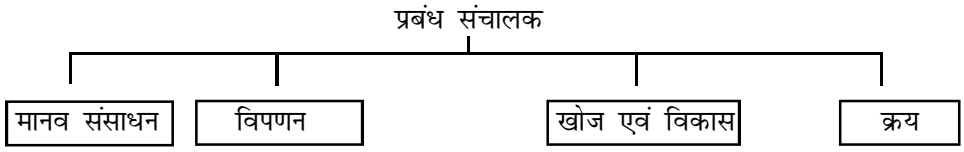

लाभ :-

(1) विशिष्टकरण :- जब कार्यो को कार्य के प्रकार के आधार पर समूहों में रखा जाता है तो सभी कार्य केवल एक प्रकार के होते है। इस प्रकार कम समय में अधिक व अच्छा काम किया जाता है। इससे विशिष्टकरण के लाभ प्राप्त होते है।

(2) समन्वय की स्थापना :- एक विभाग में काम करने वाले सभी व्यक्ति अपनी-अपनी जॉब के विशेषज्ञ होते है। इससे विभागीय स्तर पर समन्वय स्थापित करने में आसानी रहती है।

(3) प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि :- एक ही काम को बार-बार किया जाता है इसलिए प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि होती है।

(4) प्रयत्नों की न्यूनतम दोहराई :- संगठन के इस प्रारूप में प्रयत्नों की अनावश्यक दोहराई समाप्त हो जाती है।

हानियाँ :-

1. संगठनात्मक उद्देश्यों की अवहेलना :- प्रत्येक विभागीय अध्यक्ष अपनी इच्छानुसार काम करता है। वे हमेशा अपने विभागीय उद्देश्यों को ही महत्व देते है अत: संगठनात्मक उद्देश्यों की हानि होती है।

2. अंर्तविभागीय समन्वय में कठिनाई :- सभी विभागीय अध्यक्ष अपनी-अपनी मर्जी से काम करते है। इससे विभाग के अन्दर समन्वय स्थापित होते है परन्तु अंतर्विभागीय समन्वय कठिन हो जाता है।

3. सम्पूर्ण विकास में बाधा- यह कर्मचारियों के पूर्ण विकास में रूकावट है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी कुल जॉब के एक छोटे से भाग का विशेषज्ञ बन पाता है।

उपयोगिता :-

1. जहाँ व्यवसाय इकाई का आकार बड़ा हो।

2. जहाँ विशिष्टकरण आवश्यक है।

3. जहाँ मुख्य रूप से एक ही उत्पाद बेचा जाता हो।

प्रभागीय संगठन ढाँचा :- पूरी संस्था को उसके द्वारा उत्पादित किया जाने वाले उत्पादों (जैसे :- मेटल उत्पाद, प्लास्टिक उत्पाद आदि)के आधार पर विभक्त करने को प्रभागीय संगठन ढाँचा कहते है।

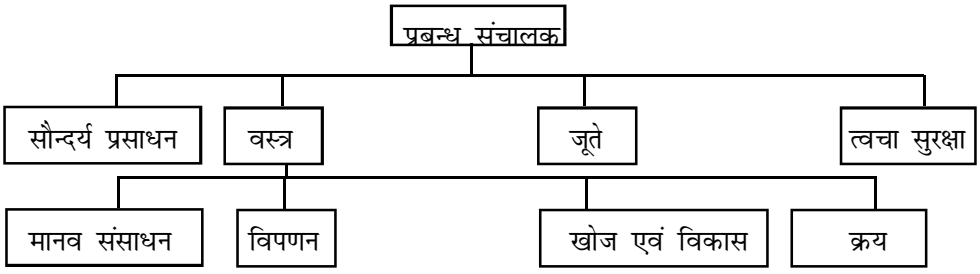

लाभ :- 1. डिविजनल अध्यक्षों का विकास :- प्रत्येक डिविजनल अध्यक्ष अपने उत्पादन से संबंधित सभी कार्य देखता है। इससे एक डिविजनल अध्यक्ष में विभिन्न कौशल विकसित होते हैं।

2. डिविजनल परिणामों को आंका जा सकता है :- इसी आधार पर अलाभदायक डिविजन को बंद करने का निर्णय लिया जा सकता है।

3. शीघ्र निर्णय :- एक डिविजन का प्रबन्धक अपने डिविजन के बारे में स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकता है।

हानियाँ :- 1. डिविजनल अध्यक्षों के मध्य संघर्ष उत्पन्न करती है क्योंकि वे अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते है।

2. कार्यो की दोहराई :- प्रत्येक डिविजन के लिए सभी क्रियाएं की जाती है इससे कार्यो की अनावश्यक दोहराई होती है।

3. स्वार्थी प्रवृत्ति :- प्रत्येक डिविजन का यह प्रयत्न रहता है कि वह बढ़िया प्रदर्शन करे। इससे पूरी संस्था के हितों को ठेस पहुँचती है। क्योंकि अन्य डिविजनों के हितों को अनदेखा कर दिया जाता

है।

उपयोगिता :-

1. जहाँ मुख्य उत्पादों की संख्या एक से अधिक हो।

2. जहाँ संस्था का आकार काफी बड़ा हो।

औपचारिक संगठन :- का आशय ऐसी संरचना से है जिसे संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध द्वारा तैयार किया जाता है। इसमें कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों/अधिकारों एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्टत: परिभाषित कर दिया जाता है।

लक्षण :-

1. इसमें परिभाषित आपसी संबंध होता है।

2. यह नियमों एवं कार्यविधियों पर आधारित होता है।

3. यह कार्य विभाजन पर आधारित होता है।

4. यह जानबूझ कर स्थापित किया जाता है।

5. यह अव्यक्तिगत होता है अर्थात इसमें व्यक्ति का नहीं काम का महत्व होता है।

6. यह अधिक स्थिर होता है।

लाभ :-

1. उत्तरदेयता निर्धारण में आसानी क्योंकि सभी कर्मचारियों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व निश्चित होते है।

2. कार्यो का दोहराव नहीं होता।

3. आदेश की एकता का पालन करना संभंव है।

4. लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी होती है।

5. संगठन में स्थिरता रहती है क्योंकि सभी व्यक्ति अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए तथा नियमों का पालन करते हुए कार्य करते है।

हानियां :-

1. प्रत्येक कार्य के नियमबद्ध होने के कारण अनावश्यक देरी होती है।

2. पहल क्षमता की कमी आ जाती है क्योंकि कर्मचारियों को वैसा ही करना पड़ता है जैसा उनको निर्देश दिया जाता है।

3. सीमित क्षेत्र :- क्योंकि मानव संबंधो, प्रतिभा आदि की उपेक्षा होती है।

अनौपचारिक संगठन :- ऐसा संगठन जिसकी स्थापना जानबूझ कर नहीं की जाती बल्कि अनायास ही पारस्परिक समान हितों, रूचियों, धर्म एवं संबंधों के कारण हो जाती है।

लक्षण :-

1. औपचारिक संगठन पर आधारित होता है क्योंकि औपचारिक संगठन में काम कर रहे व्यक्तियों के मध्य ही अनौपचारिक संबंध होते है।

2. इसके लिखित नियम एवं प्रक्रियाएँ नही होती है।

3. स्वतंत्र संदेशवाहल श्रृंखला, क्योंकि संदेशवाहल के प्रवाह को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

4. यह जानबूझकर स्थापित नहीं किया जाता है।

5. यह व्यक्तिगत होता है क्योंकि इसमें व्यक्तियों की भावनाओं को ध्यान में रखा जाता है।

लाभ :- 1. प्रभावपूर्ण संदेशवाहन :- इसके माध्यम से संदेश, अतिशीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाये जा सकते है।

2. सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है क्योंकि समूह के सभी सदस्य संगठनात्मक व व्यक्तिगत मुद्दों पर एक दूसरे का साथ देते हैं।

3. संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति :- इसमें अधीनस्थ बिना किसी डर के अपनी बात अपने अधिकारियों को कह देते हैं जिससे अधिकारियों को उनकी कठिनाइयों को जानने में सहायता मिलती है।

हानियां :- 1. यह अफवाहें फैलाता है क्योंकि सभी व्यक्ति लापरवाही से बातचीत करते हैं कई बार गलत बात एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैल जाती है।

2. यह परिवर्तन का विरोध करता है और पुरानी पद्धतियों को ही लागू रखने पर जोर देता है।

3. सामूहिक हितों की पहल :- यह सदस्यों पर दबाव बनाता है कि समूह की उम्मीदों को सुनिश्चित करें।

औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन में अंतर

आधार	औचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
1. अर्थ	यह अधिकार तथा उत्तरदायित्व के सुव्यवस्थित ढाँचे को प्रदर्शित करता है।	यह सामाजिक संबंधों का जालतंत्र है जो कि स्वयं उत्पन्न हो जाता है।
2. प्रकृति	कठोर	लोचदार
3. अधिकार	प्रबन्ध के पद के अनुसार अधिकार उत्पन्न होते हैं।	अधिकार व्यक्तिगत गुणों से उत्पन्न होते हैं।
4. नियमों का पालन	नियमों का उल्लघंन करने पर दण्ड दिया जाता है।	कोई दंड नहीं दिया जाता
5. संप्रेषण का प्रवाह	संप्रेषण संपर्क श्रृंखला के द्वारा पूरा होता है।	संप्रेषण का बहाव नियोजित मार्ग से नहीं होता।

अधिकारण अतंरण/अधिकारों का प्रत्यायोजन भारार्पण : अधिकार अंतरण का अभिप्राय अधीनस्थों को निश्चित सीमाओं के अंतर्गत कार्य करने का अधिकार प्रदान करना है। प्रबन्धक जो प्राधिकार

प्रत्यायोजन करता है वह सौपें गए कार्यो के उचित निष्पादन के संबंध में अपने अधीनस्थों को उत्तरदायी ठहरा सकता है एवं यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसके अधीनस्थ कार्य को प्रभावशाली रूप से करते हैं, जवाबदेयता, निर्धारित करता है।

अधिकार अंतरण के तत्व :-

1. अधिकार :- इसका अभिप्राय निर्णय लेने की शक्ति से है। जब तक अधीनस्थों को अधिकार प्रदान न कर दिए जाएं तब तक कार्यभार सौंपना अर्थहीन होता है।

2. उत्तरदायित्व :- इसका अर्थ सौपें गए काम को ठीक ढंग से पूरा करने की अधीनस्थ की जिम्मेदारी से है। उत्तरदायित्व काम सौपंने पर ही उत्पन्न होता है। अतः काम सौपनें को ही उत्तरदायित्व कहा जा सकता है।

3. जवाबदेही/उत्तरदेयता :- इसका अभिप्राय अधीनस्थ द्वारा कार्य निष्पादन के लिए अधिकारी को जवाब देने से है।

जवाबदेही की निरपेक्षता का सिद्धान्त - अधिकारों का भारार्पण किया जा सकता है किंतु प्रबन्धक द्वारा उत्तरदायित्वों/जवाबदेही का भारार्पण नहीं किया जा सकता। इसके अनुसार किसी अधीनस्थ को सौपें गए अधिकार वापस लेकर किसी अन्य को भारार्पित किए जा सकते है। अधीनस्थ द्वारा की गई किसी गलती के लिए प्रबंधक अपनी जिम्मेदारियों से बच नहीं सकता।

अधिकार अंतरण का महत्व :-

1. प्रभावपूर्ण प्रबन्ध :- प्रभावपूर्णता का अर्थ है उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लेना। अधिकार अंतरण से प्रबन्धकों के कार्यभार में कमी आती है और वे अधिक महत्वपूर्ण कार्यो जैसे नियोजन/निर्णयन/नियंत्रण आदि पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है।

2. कर्मचारियों को प्रेरणा-जब प्रबन्धक अपने उत्तरदायित्वों एवं अधिकार को अपने अधीनस्थों के साथ बाँटते हैं तो अधीनस्थों में विश्वास की भावना विकसित होती है तथा वे प्रेरित होते हैं।

3. कर्मचारियों का विकास :- अधिकार अंतरण के परिणामस्वरूप कर्मचारियों को अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने के ज्यादा अवसर मिलते हैं तथा वे अपनी कुशलताओं का विकास होने देते हैं

4. शीघ्र निर्णयन :- अधीनस्थों को निर्णय लेने के लिए पर्याप्त अधिकार दिए जाते हैं। उन्हें निर्णय के संबंध में बार बार अधिकारियों के पास जाने की आवश्यकता नही होती। यह निर्णय को गति प्रदान करता है।

5. उत्तम समन्वय :- अधिकार अंतरण के तत्व-प्राधिकार, उत्तरदायित्व व जवाबदेयता संगठन में विभिन्न उपकार्यो के बारे में अधिकारों, कर्त्तव्यों तथा जवाबदेयता को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। सब कुछ स्पष्ट होने पर उत्तम समन्वय स्वतः ही स्थापित हो जाता है।

अधिकार, उत्तरदायित्व एवं जवाबदेयता में अंतर

	आधार	अधिकार	उत्तरदायित्व	जवाबदेयता
1.	आशय	इसमें आदेश देने का का अधिकार होता है।	सुपुर्द किये गए कार्य को करने का दायित्व होता है।	सौपें गए कार्य के परिणाम के संबंध में जवाबदेयता होती

				है।
2.	उद्‌भव	यह औपचारिक स्थिति से उत्पन्न होता है।	यह प्रत्यायोजि प्राधिकार से उत्पन्न होता है।	यह उत्तरदायित्व से उत्पन्न होता है।
3.	प्रवाह	यह उच्च अधिकारी से अधीनस्थ की ओर नीचे की तरफ जाता है।	यह अधीनस्थ से उच्च अधिकारी की ओर ऊपर की तरफ जाता है	यह अधीनस्थ से उच्च अधिकारी की और उपरिगामी होता है।
4.	वापस लिया जाना	इसे सूचना देकर किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।	इसे वापस नही लिया जा सकता है।	इसे भी वापस नहीं लिया जा सकता है।

विकेंद्रीकरण :- विकेन्द्रीयकरण का अर्थ केवल उन अधिकारों को छोड़कर जिनको उच्च स्तर पर सुरक्षित रखना जरूरी है शेष सारे अधिकार अधीनस्थों को स्थाई रूप से सौंप देने से है। विकेंद्रीयकरण अधिकार अंतरण का ही एक विस्तृत रूप है। इसके अंतर्गत निर्णय लेने के केन्द्रों में वृद्धि हो जाती है क्योंकि मध्य स्तर एवं निम्न स्तर के प्रबन्धकों को भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किए जाते है।

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण :- केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण विभिन्न स्तरों पर प्रबन्धकों के बीच प्राधिकार के वितरण के प्रारूप का प्रतिनिधित्व करता है। केन्द्रीयकरण एक बिन्दु पर या कुछ हाथों में निर्णय लेने की शक्ति के केन्द्रित होने से है। ऐसे संगठन में मध्यम एवं निम्न स्तरीय प्रबन्धकों को बहुत कम अधिकार दिए जाते है। कोई भी संगठन पूरी तरह से केन्द्रीयकृत नहीं हो सकता। वे एक साथ विद्यमान रहते है। इसमें संतुलन लाने की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे संगठन का आकार बढ़ता जाता है उसमें निर्णनय लेने का विकेन्द्रीयकरण होता जाता है। इस प्रकार इन दोनों की आवश्यकता होती है।

विकेन्द्रीयकरण का महत्व :-

1. सहायकों में पहल शक्ति का विकास :- इससे सहायकों में आत्मविश्वास बढ़ता हैं क्योंकि कर्मचारियों को अधिक स्वतंत्रता एवं प्राधिकार दिये जाते है जिससे उनमें पहल शक्ति की भावना बढ़ती है।
2. शीघ्र निर्णयन :- सभी प्रबन्धकीय निर्णयों का बोझ कुछ ही व्यक्तियों पर न होकर अनेक व्यक्तियों में बंट जाने के कारण निर्णय शीघ्र लिए जाते है।
3. उच्च प्रबन्ध के कार्यभार में कमी :- इसके अंतर्गत दैनिक समस्याओं से संबंधित निर्णय लेने के सभी अधिकार अधीनस्थों को सौंप दिए जाते है। इससे वे छोटी-छोटी समस्याओं में नही उलझे रहते और उनके कार्यभार में काफी कमी हो जाती है।
4. विकास में सहायक :- इसके अंतर्गत अधीनस्थों को निर्णय लेने की पूरी स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। यह स्थिति अधीनस्थों में उत्तरदायित्व की भावना पैदा करती है तथा वे अच्छे परिणाम प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जिससे संगठन का विकास संभव होता है।

5. बेहतर नियंत्रण :- यह प्रत्येक स्तर पर कार्य निष्पादन के मूल्यांकन को संभव बनाता है। विभागों को उनके परिणामों के प्रति व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जाता है। प्रबंधक इसका सामना करने के लिए बेहतर नियंत्रण पद्धति को अपनाते है।

अधिकार अंतरण एवं विकेन्द्रीयकरण में अंतर :-

आधार	अधिकार अंतरण	विकेन्द्रीयकरण
1. प्रकृति	यह सभी संस्थाओं में जरूरी होता है अर्थात इसके अभाव में काम नहीं चल सकता	इसका पाया जाना जरूरी नहीं है अर्थात इसके आभाव में काम चल सकता है।
2. कार्यवाही की स्वतंत्रता	इसके अंतर्गत अधिकार सौंपने के बाद भी अधिकार सौंपने वाले का अधीनस्थ पर पूरा नियंत्रण रहता है।	इसके अंतर्गत प्राय अधिकार सौंपने वाले का अधीनस्थों पर कोई नियंत्रण नही रहता।
3. स्थिति	यह कार्य विभाजन के फलस्वरूप की जाने वाली प्रक्रिया है।	यह उच्च प्रबन्ध द्वारा बनाई गई नीति का परिणाम होता है।
4. क्षेत्र	अधिकार अंतरण अधिकारों के सीमित वितरण को प्रदर्शित करता है इसलिए इसका क्षेत्र सीमित होता है।	यह अधिकारों के व्यापक वितरण को दर्शाता है इसलिए इसका क्षेत्र व्यापक होता है।
5. उद्देश्य	इसका उद्देश्य एक अधिकारी के कार्यभार को कम करना है।	इसका उद्देश्य संगठन में सत्ता का फैलाव करना है।

1 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 1 :- संगठन द्वारा प्रभावी प्रशासन कैसे संभव है?

प्रश्न 2 :- प्रबन्ध के उस कार्य का नाम बताइए जो भौतिक, वित्तीय एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय स्थापित कर निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उनमें उत्पादक संबंध बनाता है।

प्रश्न 3 :- उस संगठन का नाम बताइए जो समूह परंपराओं द्वारा संचालित होता है।

प्रश्न 4 :- संगठन चार्ट से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न 5 :- संगठन संरचना से आपका क्या अभिप्राय है?

प्रश्न 6 :- अंर्तविभागीय समन्वय में कठिनाई किस संगठन ढांचे की एक सीमा है?

प्रश्न 7 :- अधिकार का क्या अर्थ है?

प्रश्न 8 :- अधिकार अंतरण का क्या आधार है?

प्रश्न 9 :- अधिकार अंतरण से 'प्रभावपूर्ण प्रबन्ध' क्यों संभंव है?

3 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 10 :- कार्यात्मक संगठन ढांचा क्या है? इस ढांचे के दो लाभ लिखिए।

प्रश्न 11 :- जवाबदेही अधिकार से किस प्रकार संबंधित है। स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 12 :- अधिकार का प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण क्यों आवश्यक है?

प्रश्न 13 :- विकेन्द्रीयकरण की तीन विशेषताएं लिखिए?

प्रश्न 14 :- संगठन प्रक्रिया के तीन चरण लिखिए?

4/5 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 15 :- औपचारिक संगठन की कोई चार विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए?

प्रश्न 16 :- एक साफ्टवेयर कम्पनी सचिन लि॰ के कर्मचारियों ने अपने मनोरंजन के लिए ड्रामेटिक ग्रुप बनाया। इस प्रकार स्थापित संगठन का नाम बताइए और इसकी तीन विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 17 :- 'औपचारिक' तथा 'अनौपचारिक' संगठन में कोई चार अंतर बताइए?

प्रश्न 18 :- एक प्रबन्धक का विचार है कि वह काम की क्वालिटी के लिए उत्तरदायी नहीं है जिसे उसने अपने अधीनस्थ को सौंप दिया था। क्या आप इस विचार से सहमत है? उचित तर्क देकर अपने उत्तर को स्पष्ट करें?

प्रश्न 19 :- प्रत्यायोजन वह माध्यम है जिसके द्वारा एक प्रबन्धक अपनी कार्यशक्ति बढ़ाता है। इस कथन को स्पष्ट कीजिए?

6 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 20 :- प्रबन्ध के एक कार्य के रूप में संगठन का महत्व लिखिए?

प्रश्न 21 :- 'औपचारिक संगठन, अनौपचारिक संगठन की अपेक्षा बेहतर माना जाता है? क्या आप इस कथन से सहमत है? कारण दीजिए।

प्रश्न 22 :- एक संगठन के प्रभागीय ढांचे का क्या अर्थ है? इसके किन्हीं दो लाभों तथा किन्ही दो सीमाओं की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 23 :- विकेन्द्रीयकरण एक ऐच्छिक नीति है। एक संगठन विकेन्द्रीयकरण होना क्यों पसन्द करता है? व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 24 :- अधिकार अंतरण का अर्थ एवं प्रक्रिया का वर्णन कीजिए?

अध्याय 6

'नियुक्तिकरण'

नियुक्तिकरण का अर्थ है - लोगों को काम पर लगाना। यह मानव संसाधनों के नियोजन से प्रारम्भ होता है तथा भर्ती, प्रशिक्षण, विकास, पदोन्नति तथा कार्यदल के निष्पादन मूल्यांकन को शामिल करता है।

नियुक्तिकरण की आवश्यकता तथा महत्व :-

(1) योग्य कर्मचारी प्राप्त करना :- यह विभिन्न पदों के लिए योग्य कर्मचारियों को खोजने में सहायता करता है।

(2) बेहतर निष्पादन :- सही व्यक्ति को सही स्थान पर रखकर यह बेहतर निष्पादन को निश्चित करता है।

(3) निरन्तर विकास :- उचित नियुक्तिकरण उपक्रम के निरन्तर विकास को सुनिश्चित करता है।

(4) मानव संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग :- यह आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों को रखने से बचाता है। उच्च श्रम लागत को रोकने में सहायक है।

(5) कर्मचारियों का मनोबल बढ़ाता है :- यह कर्मचारियों के कार्य सन्तोष में सुधार करता है।

नियुक्तिकरण प्रक्रिया के चरण :-

मानव शक्ति आवश्यकताओं का आकलन

↓

भर्ती

↓

आवेदकों मे से चयन

↓

अनुस्थापन तथा अभिविन्यास

↓

प्रशिक्षण तथा विकास

नियुक्तिकरण के विभिन्न पहलू :-

(क) भर्ती (ख) चयन (ग) प्रशिक्षण

भर्ती :- भर्ती सम्भावित कर्मचारियों को ढूढ़ने तथा संगठन में काम करने के लिए आवेदन करने

के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है।

भर्ती के स्त्रोत :-

(क) आन्तरिक स्त्रोत (ख) बाह्य स्त्रोत

भर्ती के आन्तरिक स्त्रोत :- आन्तरिक स्त्रोत से तात्पर्य संगठन के भीतर प्रार्थियों को आमंत्रित करना है।

इस के दो महत्वपूर्ण स्त्रोत है :-

(1) स्थानातंरण :- इसमें कर्मचारी को एक जगह से दूसरी जगह भेज देना शामिल है जैसे एक विभाग से दूसरे विभाग में या एक पारी से दूसरी पारी में भेजना।

(2) पदोन्नति :- इसमें कर्मचारियों को निम्न पद से उच्च पदों पर भेज देना शामिल है। जिसमें कर्मचारियों की जिम्मेदारी, सुविधा तथा भुगतान बढ़ जाते है।

आन्तरिक स्त्रोंतों के लाभ :-

(1) कर्मचारी अपने कार्य निष्पादन के सुधार के लिए प्रेरित होते है।

(2) आंतरिक भर्ती चयन प्रक्रिया को सरल कर देती है।

(3) कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं विकास पर समय बरबाद नहीं होता।

(4) आन्तरिक भर्ती के स्त्रोत सस्ते है।

आन्तरिक स्त्रोतों की सीमाएं :-

(1) नयी प्रतिभाओं के संस्था में प्रवेश के अवसर कम होते है।

(2) कर्मचारी अकर्मण्य हो जाते है।

(3) कर्मचारियों के मध्य प्रतियोगिता में बाधा पड़ती है।

(4) कर्मचारियों का लगातार स्थानांतरण संगठन की उत्पादकता को घटा सकता है।

भर्ती के बाह्य स्त्रोत :-

(1) प्रत्यक्ष भर्ती :- उपक्रम के सूचना पट् पर एक सूचना लगाई जाती है जिसमें रिक्त स्थानों का विवरण होता है।

(2) प्रतीक्षा सूची :- अनेक बड़े व्यापारिक उपक्रम अपने कार्यालय में प्रतीक्षा सूची रखते है आवश्यकता होने पर उन्हें बुलाया जा सकता है।

(3) विज्ञापन :- समाचार पत्र या पत्रिकाओं में रिक्त स्थानों के विज्ञापन द्वारा भर्ती की जा सकती है।

(4) रोजगार कार्यालय :- नौकरी तलाशने वाले इन कार्यालयों में अपना नाम दर्ज कराते है। इनके माध्यम से भर्ती की जा सकती है।

(5) महाविद्यालय से भर्ती या ठेकेदारों के माध्य से भी भर्ती की जा सकती है।

भर्ती के बाह्य स्त्रोतों के लाभ :-

(1) योग्य कर्मचारी :- भर्ती के बाह्य स्त्रोत के प्रयोग से प्रबन्ध योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को संस्था के रिक्त पदों के लिए आवेदन का अवसर देती है।

(2) विस्तृत विकल्प :- प्रबन्धकों के पास विस्तृत विकल्प उपलब्ध होते है।

(3) नयी प्रतिभाएं :- नये विचारों का उपक्रम में समावेश होता है।

(4) प्रतियोगिता की भावना :- कर्मचारियों में प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है।

बाह्य स्त्रोत की कमियाँ/सीमाएँ :-

(1) वर्तमान कर्मचारियों में असन्तोष की भावना :- संस्था में काम करने वाले कर्मचारियों में असन्तोष फैलता है क्योंकि वे महसूस करते है कि उनकी पदोन्नति के मौके घट गए है।

(2) महंगी प्रक्रिया :- विज्ञापन आदि पद लागत अधिक आती है।

(3) लम्बी प्रक्रिया :- भर्ती प्रक्रिया में ज्यादा समय लगता है।

(ख) चयन :- चयन एक प्रक्रिया है जो संगठन के भीतर व बाहर से वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की स्थिति के लिए उपयुक्त अभ्यार्थियों को चुनती है।

चयन प्रक्रिया के चरण

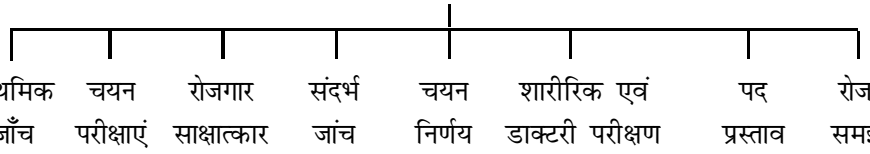

(ग) प्रशिक्षण :- प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए कर्मचारियों की जानकारी एवं तकनीकी कौशल बढ़ाने की गतिविधि है।

प्रशिक्षण से संगठन को लाभ :-

(1) प्रशिक्षण कर्मचारियों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को बढ़ाता है।

(2) प्रशिक्षण कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाता है।

(3) कर्मचारियों को नई तकनीक का ज्ञान प्राप्त होता है।

(4) मशीनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

प्रशिक्षण से कर्मचारियों को लाभ :-

(1) प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियों में कौशल एवं ज्ञान में वृद्धि होती है।

(2) कर्मचारी के अधिक कमाने में सहायता होती है।

(3) कर्मचारी दुर्घटनाओं से बचाव कर सकते है।

(4) प्रशिक्षण कर्मचारियों के सन्तोष तथा मनोबल को बढ़ाता है।

प्रशिक्षण की विधियाँ :-

(क) आन दा जॉब विधियाँ :- यह उस जगह लागू होती है जब कर्मचारी वास्तव में काम कर रहे होते है - इसका अर्थ है जब करों तब सीखों। मुख्य विधियां निम्न है।

(1) प्रशिक्षणार्थी कार्यक्रम :- इस कार्यक्रम में अनुभवी कर्मचारी को प्रशिक्षक नियुक्त किया जाता है जो मजदूर को सारी कुशलताएं सिखाता है।

(2) शिक्षण या कोचिंग :- इस पद्धति में उच्च अधिकारी अनुशिक्षण की भांति प्रशिक्षणार्थी को निर्देश देते है।

(3) कार्यबदली :- इस प्रकार के प्रशिक्षण में कर्मचारी को एक विभाग को दूसरे विभाग या एक कार्य से दूसरे कार्य में स्थानान्तरण किया जाता है।

(ख) ऑफ दा जॉब विधियाँ :- इस पद्धति में कर्मचारी को प्रशिक्षण कार्यस्थल से दूर दिया जाता है इसका अर्थ है काम करने से पहले सीखों। मुख्यविधियां निम्न है :-

(1) कक्षा कक्ष व्याख्यान :- व्याख्यानों के द्वारा कर्मचारियों को सूचनाएं प्रदान की जाती हैं। इसमें दृश्य श्रव्य सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है।

(2) चलचित्र :- ये सूचनाएं प्रदान करती है।

(3) समस्या अध्ययन :- प्रशिक्षार्थी केस का अध्ययन कर कारणों का पता लगता है एवं उन्हें दूर करता है।

(4) प्रकोष्ठ प्रशिक्षण :- इसमें संयंत्र का एक मॉडल बनाया जाता है उस पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

(5) कम्पयूटर प्रतिमान :- कम्पयूटर प्रोग्राम द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है।

(क) अतिलघुस्तरीय प्रश्न (एक अंक वाले प्रश्न) :-

(1) नियुक्तिकरण का अर्थ समझाइए।

(2) अनुस्थापन का अर्थ बताइए।

(3) चयन को नकारात्मक प्रक्रिया क्यों कहा जाता है।

(4) कार्यबदली प्रशिक्षण का एक लाभ बताइयें?

(5) प्रारम्भिक जांच का एक उद्देश्य बताइये?

(6) साक्षात्कार क्या है?

(7) कार्य पर प्रशिक्षण से आप क्या समझते है?

(8) भर्ती से क्या अभिप्राय है?

(ख) लघुस्तरीय प्रश्न (3/4 अंक वाले प्रश्न) :-

(9) रोजगार परीक्षाओं के किन्ही तीन प्रकारों का वर्णन कीजिए?

(10) चयन और प्रशिक्षण शब्द की व्याख्या कीजिए?

(11) भर्ती के बाह्य स्त्रोतों की तुलना में आन्तरिक स्त्रोत किस प्रकार बेहतर होते है। अपने उत्तर के सर्मथन में कारण बताइये।

(12) प्रशिक्षण एवं विकास में अन्तर बताइयें?

(ग) दीर्घ स्तरीय प्रश्न (5/6 अंक वाले प्रश्न) :-

(13) प्रबन्ध के कार्य के रूप में नियुक्तिकरण के महत्व की व्याख्या कीजिए?

(14) नियुक्तिकरण प्रक्रिया में शामिल चरणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?

(15) प्रशिक्षण का क्या अर्थ है इसके मुख्य उद्देश्य कौन कौन से है?

(16) भर्ती के बाह्य स्त्रोत के रूप में लाभ व हानियों का वर्णन कीजिए?

(17) ''जहाँ भर्ती की प्रक्रिया खत्म होती है वहाँ चुनाव की प्रक्रिया शुरू होती है। ''इस कथन के प्रकाश में भर्ती और चुनाव के बीच अन्तर बताइयें।

(18) चयन प्रक्रिया के चरणों की व्याख्या कीजिए?

(19) प्रशिक्षण की ऑफ दा जॉब विधियों का वर्णन कीजिए?

(20) भर्ती के आन्तरिक स्त्रोतों के लाभ व हानियों का वर्णन कीजिए?

अध्याय 7

'निर्देशन'

निर्देशन का अर्थ :- निर्देशन का अभिप्राय संगठन में मानव संसाधन को निर्देश देना, उसका मार्गदर्शन करना संदेशवाहन करना व उसे अभिप्रेरित करना है ताकि उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। निर्देशन का अर्थ केवल निर्देशों से नहीं होता बल्कि इसमें कर्मचारियों को उस समय देखा जाना भी सम्मिलित होता है जब वे कार्य कर रहे होते हैं। इसमें संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा देना एवं नेतृत्व करना भी शामिल होता है।

विशेषताएं :- (1) निर्देशन गतिविधि को प्रारम्भ करता है - प्रबन्ध के अन्य कार्य गतिविधि हेतु आधार तैयार करते है परन्तु निर्देशन संगठन के भीतर कार्य को प्रारम्भ करता है।

(2) निर्देशन प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर होता है - उच्चस्तरीय प्रबन्धक से लेकर निम्नस्तरीय तक सभी प्रबन्धक निर्देशन कार्य करते है।

(3) निर्देशन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है - निर्देशन पर्यवेक्षण, संदेशवाहन, नेतृत्व एवं अभिप्रेरणा की निरंतर रूप से चलने वाली प्रक्रिया होती है। यह संगठन में जीवनभर चलती रहती है।

(4) निर्देशन का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। यह उच्च स्तरीय प्रबन्ध से शुरू होकर निम्नस्तरीय प्रबन्ध पर समाप्त होता है।

निर्देशन का महत्व :- निर्देशन का महत्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है :-

(1) यह गतिशीलता प्रदान करता है - संगठन में व्यक्ति केवल तब कार्य शुरू करते हैं जब वे अपने वरिष्ठ अधिकारियों से निर्देश प्राप्त करते है। यह निर्देशन कार्य ही है जो योजनाओं को परिणामों में बदलने हेतु वास्तविक कार्य का प्रारम्भ करता है।

(2) कर्मचारियों के प्रयासों को एकीकरण करना :- संगठन में सभी क्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी रहती है अतः सभी क्रियाओं में सामजस्य स्थापित करना आवश्यक है। निर्देशन पर्यवेक्षण, दिशा निर्देश व सलाह के द्वारा अधीनस्थों की गतिविधियों को समन्वित करता है।

(3) यह अभिप्रेरण का माध्यम है :- संस्था के उद्देश्यों को अभिप्रेरित कर्मचारी ही पूरा कर सकते है। अभिप्रेरण का काम प्रबन्ध के निर्देशन कार्य द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(4) यह परिवर्तनों को लागू करना संभव बनाता है - प्रायः कर्मचारी जिस तरह के ढाँचे में काम कर रहे होते हैं वे उसमें कोई परिवर्तन स्वीकार नही करते। प्रबन्धक निर्देशन के माध्यम से कर्मचारियों को इस प्रकार तैयार करते हैं कि वे परिवर्तनों को स्वीकार करने लगते है।

(5) यह संगठन में संतुलन स्थापित करता है - कभी-कभी व्यक्तिगत व संस्थागत उद्देश्यों में संघर्ष पैदा हो जाता है। निर्देशन इन संघर्षो को दूर करता है और संगठन में संतुलित स्थिति स्थापित करने

में सहायता करता है।

निर्देशन के सिद्धान्त :- निर्देशन के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है।

(1) अधिकतम व्यक्तिगत योगदान सिद्धान्त :- इसके अनुसार ऐसी निर्देशन पद्धति अपनानी चाहिए जिससे कर्मचारी अभिप्रेरित हो और संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकतम योगदान दें।

(2) उद्देश्यों के सामजस्य का सिद्धान्त :- इसके अनुसार संगठनात्मक उद्देश्यों और व्यक्तिगत उद्देश्यों में पूर्ण सामजस्य होना चाहिए। प्रबन्ध को चाहिए कि उपयुक्त निर्देशन विधि द्वारा दोनो पक्षों के उद्देश्यों में सामजस्य स्थापित करे।

(3) आदेश की एकता का सिद्धान्त :- इसके अनुसार एक अधीनस्थ को एक समय पर एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए। अन्यथा संगठन में भ्रम, झगड़े व अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होगी।

(4) निर्देशन पद्धति की उपयुक्तता का सिद्धान्त :- इसके अनुसार उपयुक्त निर्देशन विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए जैसे - प्रभावी ढंग से पर्यवेक्षण करना, कुशल नेतृत्व प्रदान करना, खुला संदेशवाहन अपनाना तथा अभिप्रेरण के उपयुक्त माध्यम को लागू करना।

(5) प्रबन्धकीय संदेशवाहन का सिद्धान्त :- इसके अनुसार प्रबन्ध द्वारा यह देखा जाना चाहिए कि जो कुछ कहा गया है क्या अधीनस्थों द्वारा उसे उन्हीं अर्थो में समझ लिया गया है। इसमें अधीनस्थों का काम सरल हो जाता है।

(6) अनौपचारिक संगठन का प्रयोग :- प्रबंधक को प्रभावशाली निर्देशन के लिए अनौपचारिक संगठन को स्वीकार करना चाहिए तथा उसका उपयोग करना चाहिए।

7. नेतृत्व का सिद्धान्त :- इसके अनुसार अधीनस्थों का निर्देशन करते समय प्रबन्धकों को अच्छा नेतृत्व प्रदान करना चाहिए।

निर्देशन के तत्व

पर्यवेक्षण, नेतृत्व **निर्देशन के तत्व** अभिप्रेरण, संप्रेषण

पर्यवेक्षण :- इसका अभिप्राय अपने अधीनस्थों के दिन-प्रतिदिन के काम की प्रगति की देखभाल करने एवं उनका मार्गदर्शन करने से है। पर्यवेक्षण में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अधिकारी एवं अधीनस्थ में आमने-सामने होता है।

पर्यवेक्षण का महत्व/पर्यवेक्षक की भूमिका

1. कर्मचारियों तथा प्रबंध के मध्य कड़ी :- पर्यवेक्षक प्रबन्धकों एवं श्रमिकों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है वह श्रमिकों को प्रबन्ध की नीतियाँ बताता है तथा कर्मचारियों की समस्याओं पर प्रबंध का ध्यान आकर्षित करता है।

2. निर्देशों का जारी किया जाना :- पर्यवेक्षक कार्यो को करवाने के लिए आदेश और निर्देश जारी करता है तथा यह तय करता है कि निर्देश सभी कर्मचारियों तक पहुँच गये है।

3. नियंत्रण सुगम बनता है :- नियंत्रण का आशय वास्तविक एवं नियोजित उत्पाद में तालमेल बैठाना होता है। पर्यवेक्षण कार्य के निष्पादन को लक्ष्य के अनुसार किया जाना तय करता है।

4. अनुशासन बनाए रखना :- पर्यवेक्षक का कठोर पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन कर्मचारियों को अधिक अनुशासित रहकर कार्य करने की प्रेरणा देता है।

5. प्रतिपुष्टि :- पर्यवेक्षण कर्मचारियों के साथ सम्पर्क करके उनकी सहायता करता है। सीधा सम्पर्क होने के कारण वे उनसे प्राप्त सुझावों व शिकायतों की जानकारी प्रबन्ध को देते है।

6. अभिप्रेरणा में वृद्धि :- अच्छी नेतृत्व क्षमता रखने वाला पर्यवेक्षक श्रमिकों के मनोबल को बढ़ा सकता है। पर्यवेक्षक अपनी सर्वोत्तम क्षमता से कर्मचारियों को कार्य करने के लिए प्रेरित करते है।

7. संसाधनों का कुशलतम उपयोग :- पर्यवेक्षण के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं पर निगरानी रखी जाती है। ऐसी स्थिति में संसाधनों का बेहतर उपयोग संभव होता है।

अभिप्रेरणा का अर्थ

अभिप्रेरणा का अर्थ उस प्रक्रिया से है जो इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु लोगों को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है। अभिप्रेरणा लोगों की संतुष्टि की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

विशेषताएं :- 1. अभिप्रेरणा एक आंतरिक अनुभव है। सर्वप्रथम व्यक्ति के मस्तिष्क में कुछ आवश्यकताएँ जन्म लेती है जिन का प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है और उनको पूरा करने के लिए व्यक्ति कुछ कार्य करने की सोचता है।

2. लक्ष्य निर्देशित व्यवहार :- यह व्यक्तियों को इस तरह से व्यवहार करने की प्रेरणा देता है। ताकि वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

3. सकारात्मक अथवा नकारात्मक :- सकारात्मक अभिप्रेरणा का आशय व्यक्तियों को बेहतर कार्य करने तथा कार्य को सराहने के लिए प्रोत्साहन देना होता है। नकारात्मक अभिप्रेरणा व्यक्तियों को धमकी या दण्ड द्वारा कार्य करने पर बल दिया जाता है।

4. जटिल प्रक्रिया :- यह एक कठिन प्रक्रिया है क्योंकि व्यक्तियों की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं तथा ये घटती-बढ़ती रहती है।

अभिप्रेरणा प्रक्रिया :- अभिप्रेरणा की प्रक्रिया मनुष्य की आवश्यकताओं पर निर्भर करती है।

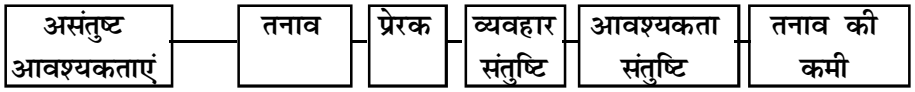

एक असंतुष्ट आवश्यकता व्यक्ति में परेशानी पैदा करती है जो इच्छा को उत्पन्न करती है। ये इच्छाएं आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए खोजी व्यवहार को उत्पन्न करती है। यदि यह आवश्यकता संतुष्ट हो जाती है तो व्यक्ति को परेशानी से छुटकारा मिल जाता है।

महत्व :- 1. संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति :- संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरणा के द्वारा कार्यरत व्यक्तियों को मेहनत करने तथा सर्वोत्तम तरीके से योगदान करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है।

2. कर्मचारियों की उच्चतर कार्यक्षमता :- अभिप्रेरणा कार्य करने की सक्षमता एवं कार्य करने की इच्छा के बीच अन्तर को भरने में एक पुल का कार्य करती है तथा इच्छा से कार्यक्षमता में सुधार आता

है।

3. परिवर्तन की सुविधा :- प्रभावशाली अभिप्रेरणा परिवर्तन का विरोध समाप्त करने में सहायता करती है। अभिप्रेरित व्यक्ति संगठन के हित में होने वाले प्रत्येक बदलाव का साथ देते है।

4. कार्यबल में स्थायित्व :- अभिप्रेरणा कर्मचारियों में विश्वास लाती है। अभिप्रेरित कर्मचारी काम से अनुपस्थित नहीं रहते क्योंकि काम का स्थान उनके लिए खुशी का स्त्रोत बन जाता है।

5. संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग :- अभिप्रेरित कर्मचारी मशीनों व सामग्री को अच्छी प्रकार से संभाल पाते है। इससे संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है तथा बर्बादी में कमी आती है।

मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक प्रोत्साहन :- प्रोत्साहन का अर्थ है वे सभी माप जो व्यक्तियों को अभिप्रेरित कर निष्पादन सुधारने में प्रयोग किए जाते है।

प्रोत्साहन के प्रकार

मौद्रिक	**गैर मौद्रिक**
वेतन तथा भत्ता	पद प्रतिष्ठा
लाभ में भागीदार	कर्मचारियों को मान-सम्मान/
बोनस	पहचान पद सुरक्षा
अवकाश ग्रहण लाभ	कार्य या नौकरी की सुरक्षा
सेवा निवृत्ति लाभ	कर्मचारियों की भागीदारी

मास्लो की आवश्यकता - क्रम अभिप्रेरणा का सिद्धान्त

मास्लो में मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को प्राथमिकता के आधार पर पांच भागों में बांटा है - यह उच्च क्रम की आवश्यकताएँ है यह आमतौर पर उन लोगों में पाई जाती है जिनकी पहली चार आवश्यकताएँ पहले ही पूरी हो चुकी हों।

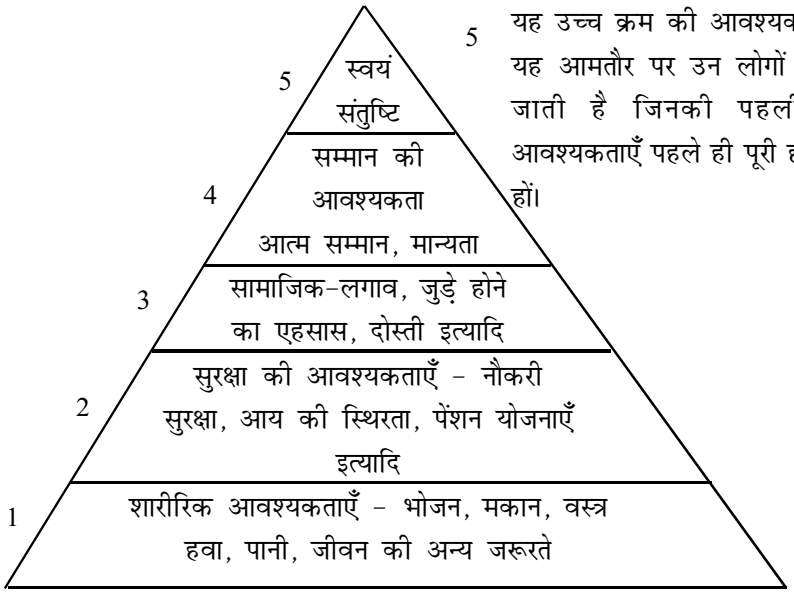

नेतृत्व :- नेतृत्व काम पर लोगों के व्यवहार को, संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रभावित करने की प्रक्रिया है।

विशेषताएं :- 1. नेतृत्व दूसरों को प्रभावित करने की व्यक्तिगत योग्यता की ओर संकेत करता है।
2. दूसरों के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।
3. संगठन के सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्रिया है।
4. लगातार चलने वाली प्रक्रिया है।

महत्व :-

1. कर्मचारियों का मार्गदर्शन करने तथा प्रेरणा देने में सहायता करता है।
2. विश्वास उत्पन्न करता है - नेता कर्मचारियों की छिपी प्रतिभा एवं गुणों को मान्यता देकर उनके विश्वास को बढ़ाता है।
3. विवादों को प्रभावशाली रूप से हल करता है तथा विवादों के प्रतिकूल प्रभाव नहीं होने देता।
4. वांछित परिवर्तनों को लागू करने में सहायक होता है। अधीनस्थों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायक होता है।

अच्छे नेता की विशेषताएं/गुण :-

शारीरिक विशेषताएँ :- नेता का शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए ताकि लोग प्रभावित होकर उत्साह से कार्य करे।
2. ज्ञान : नेता को सही तरह से प्रत्येक समस्या को जाँचने में सक्षम होना चाहिए।
3. सत्यनिष्ठा :- नेता स्वामी व कर्मचारियों के मध्य की कड़ी है अतः उसे दोनों के प्रति पूरी निष्ठा के साथ कार्य करना चाहिए।
4. पहल क्षमता :- एक नेता जिसमें यह गुण होता है वह अवसरों की इंतजार नहीं करता बल्कि उन्हें पैदा करता है।
5. अभिप्रेरण कौशल :- नेता को अभिप्रेरण की विभिन्न विधियों की जानकारी होनी चाहिए ताकि कर्मचारियों को उनके स्वभाव के अनुसार प्रेरित किया जा सके।

संप्रेषण :- संप्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाया जाता है ताकि वे पारस्परिक समझ बना सके।

संप्रेषण प्रक्रिया के तत्व

(1) प्रेषक - जो अपने विचारों को प्राप्तकर्ता के पास भेजता है।
(2) संदेश - विचार, सुझाव, सूचना आदि।
(3) एन्कोडिंग - यह सूचना को विचार चिन्हों जैसे शब्दों, चित्रों आदि में बदलने की प्रक्रिया है।
(4) माध्यम - कूटबद्ध संदेश को प्राप्तकर्ता के पास भेजा जाता है।
(5) डिकोडिंग - संदेश प्राप्त करने के बाद प्राप्तकर्त्ता उसी तरह से जिस तरह प्रेषक आशा करता है, संदेश को समझने का प्रयास करता है। एनकोडिंग चिन्हों को प्रेक्षकों को भेजने की प्रक्रिया है।
(6) प्राप्तकर्त्ता - वह व्यक्ति जो प्रेक्षक के संप्रेषण को प्राप्त करता हैं।
(7) प्रतिपुष्टि - प्राप्तकर्त्ता की सभी गतिविधियां सम्मिलित हैं जो यह संकेत करती है कि उसने प्रेक्षक द्वारा भेजा गया संदेश प्राप्त कर लिया है।
(8) शोरगुल/ध्वनि - शोरगुल एक ऐसा तत्व है जो सूचना में बाधा डालता है।

संप्रेषण का महत्व - 1. समन्वय के आधार के रूप में काम करना सफलता प्राप्ति के लिए विभिन्न क्रियाओं में समन्वय आवश्यक है। इसके लिए सभी व्यक्तियों को इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि उनकी क्रियाओं में क्या सम्बन्ध है। ऐसा केवल प्रभावपूर्ण संदेशवाहन द्वारा ही संभव है।
2. निर्णय लेने के आधार के रूप में काम करना :- निर्णय से संबंधित सूचनाओं को संदेशवाहन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।
3. प्रबंधकीय कुशलता को बढ़ाती है - संदेशवाहन के माध्यम से ही प्रबन्धक निर्धारित किये गये उद्देश्यों की जानकारी अन्य व्यक्तियों को देते हैं तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य पर नियन्त्रण रखते है।
4. सहयोग तथा औद्योगिक शान्ति को बढ़ावा - संदेशवाहन के माध्यम से श्रमिक एवं प्रबन्धक दोनों को अपनी-अपनी बात कहने का अवसर मिलता है जिससे औद्योगिक शान्ति एवं सहयोग को बढ़ावा मिलता है।
5. प्रभावशाली नेतृत्व की स्थापना - प्रबन्धक अपनी संदेशवाहन कला में सुधार करके एक कुशल नेता बन सकता है।
6. मनोबल वृद्धि तथा अभिप्रेरणा प्रदान करना - प्रभावी संदेशवाहन कर्मचारियों के अभिप्रेरण एवं मनोबल वृद्धि का काम करता है।
औपचारिक संप्रेषण :- जब कार्यालय से सम्बन्धित विचारों या संदेश या सूचना का आदान प्रदान होता है तो इसे औपचारिक संप्रेषण कहते है।
औपचारिक संप्रेषण का वर्गीकरण
1. लम्बवत् संदेशवाहन :- औपचारिक श्रंखला के माध्यम से लम्बवत् रूप में ऊपर की और व नीचे की और चलता है।
(1) नीचे की ओर अथवा अधोमुखी संदेशवाहन - योजना, नीति, नियम
(2) ऊपर की ओर अथवा ऊर्ध्वमुखी संदेशवाहन - सुझाव, शिकायत
2. समतल संदेशवाहन - औपचारिक श्रंखला के माध्यम से समतल रूप में एक ही स्तर के दो व्यक्तियों के मध्य चलता है।
औपचारिक संप्रेषण का जालतंत्र संप्रेषण :- जालतंत्र संप्रेषण से तात्पर्य है वह माध्यम जिसके द्वारा संप्रेषण संपूर्ण संगठन में प्रवाहित होता है। औपचारिक संप्रेषण जाल के विभिन्न प्रकार इस प्रकार है :-

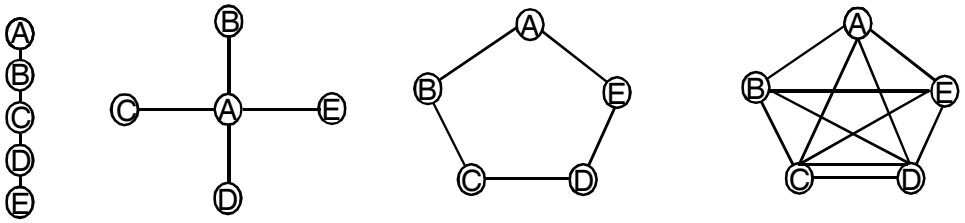

एकल श्रृंखला | चक्रीय | गोल | मुक्त प्रवाह

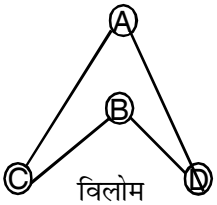

विलोम

अनौपचारिक संप्रेषण :- संचार की औपचारिक रेखाओं को अपनाएं बिना किया जाने वाला संप्रेषण अनौपचारिक संप्रेषण होता है।

अनौपचारिक संप्रेषण के अधीन सूचनाओं के प्रवाह की कोई निश्चित दिशा या मार्ग नहीं होता।

1. अंगूरीलता अथवा अनौपचारिक संप्रेषण के जाल इकहरी श्रंखला - जालतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से श्रृंखला में संचार करता है।

2. गपशप/अफवाहें :- जालतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से बिना किसी चुनाव के आधार पर बात करता है।

3. संभाव्यता - एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से निरूद्देश बातचीत करता है।

4. समूह/भीड़-भाड़ - व्यक्ति केवल उन लोगों से संचार करता है जिन पर वह विश्वास करता है।

औपचारिक तथा अनौपचारिक संप्रेषण में अंतर

आधार	औपचारिक	अनौपचारिक
1. आशय	यह अधिकार-दायित्व संबंध पर आधारित है।	यह व्यक्तियों के आपसी संबंध पारस्परिक संबंधों पर आधारित है।
2. वाहिका	इसमें संप्रेषण मार्ग पूर्वनिर्धारित होते हैं।	इसमें संप्रेषण के मार्ग निर्धारित नहीं होते, ये मानव संबंधों व भावनाओं से पनपते है।
3. गति	इसमें निर्णय देरी से लिये जाते है।	इसमें तुरन्त व शीघ्र निर्णय होते है।
4. प्रकृति	इसकी प्रकृति कठोर होती है तथा इसमें सुधार नहीं किया जा सकता है।	यह लोचदार होता है तथा एक व्यक्ति से अन्य व्यक्ति तक बदल जाता है।
5. अभिव्यक्ति	इसे बहुधा लिखित रूप मं व्यक्त किया जाता है।	इसमें बहुधा मौखिक रूप में व्यक्त किया जाता है।

प्रभावशाली संप्रेषण में बाधाएँ :-

1. भाषा संबंधी बाधाएँ :- शब्दों व भावों में संदेश के कूट लेखन व कूटवाचन समस्याओं तथा कठिनाइयों से जुड़ा है।

भाषा संबंधी मुख्य बाधाएँ निम्नलिखित हैं :-

1. संदेशों की गलत व्याख्या
2. भिन्न अर्थो वाले चिन्ह अथवा शब्द

3. त्रुटिपूर्ण अनुवाद अथवा रूपांतर
4. अर्थहीन तकनीकी भाषा
5. अस्पष्ट मान्यताएँ

मनौवैज्ञानिक बाधाएँ :- मानसिक रूप से अशांत कोई भी पक्ष संदेशवाहन को सार्थक बनाने में रूकावट बन सकता है। मानसिक बाधाएं इस प्रकार है।

1 समय से पूर्व मूल्यांकन
2. ध्यान की कमी
3. प्रसारण द्वारा हानि तथा कमजोर ठहराव :- जब संदेश कई लोगों के मध्य से होकर पहुंचता है तो प्राप्तकर्ता तक पहुँचते-पहुँचते संदेश का स्वरूप बिगड़ जाता है।
4. अविश्वास

संगठनात्मक बाधाएं :- संगठनात्मक ढांचा कर्मचारियों के संदेशवाहन करने की योग्यता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। संगठनात्मक बाधाएं इस प्रकार हैं :-

(1) संगठनात्मक नीतियां :-
(2) नियम एवं अधिनियम
(3) पदवी/पद
(4) संगठनात्मक ढाँचे की जटिलता

व्यक्तिगत बाधाएँ :- अधिकारियों व अधीनस्थों के बीच की व्यक्तिगत बाधाएं इस प्रकार है :-

(1) सत्ता के सामने चुनौती का भय
(2) अधिकारियों का अधीनस्थों के प्रति विश्वास की कमी
(3) संप्रेषण में अनिच्छा
(4) उपयुक्त प्रोत्साहनों का अभाव

प्रभावी संप्रेषण के लिए सुधार

1. संदेशवाहन से पहले विचारों अथवा लक्ष्यों को स्पष्ट करना।
2. प्राप्तकर्त्ता की आवश्यकताओं के अनुसार संप्रेषण।
3. संप्रेषण से पहले दूसरों से सलाह लेना।
4. संदेश की भाषा। शब्द व विषय वस्तु के प्रति जागरूक रहना।
5. प्राप्तकर्त्ता के लिए सहायक एवं मूल्यवान संदेश प्रेषित करना।
6. उपयुक्त प्रतिपुष्टि सुनिश्चित करना।
7. संदेश की समानता।
8. एक अच्छा श्रोता बनना

1 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 1 :- प्रबन्ध के किस कार्य को 'प्रबन्ध का क्रियाशील होना' कहा जाता है?

प्रश्न 2 :- पर्यवेक्षण अनुशासन बनाए रखने में कैसे सहायक है?

प्रश्न 3 :- आर्थिक सुरक्षा क्या है?

प्रश्न 4 :- अमौद्रिक प्रेरणा के एक प्रकार के रूप में 'कार्य सम्पन्नता' का अर्थ बताइए?

प्रश्न 5 :- 'नेतृत्व' का क्या अर्थ है?

प्रश्न 6 :- 'सत्यनिष्ठा' का क्या अर्थ है?

प्रश्न 7 :- 'एक नेता अवसरों की इंतजार नहीं करता बल्कि उन्हें पैदा करता है। यह कथन एक अच्छे नेता के किस गुण से संबंधित है?

प्रश्न 8 :- संदेशवाहन प्रक्रिया में शोर का क्या अर्थ है?

प्रश्न 9 :- संदेशवाहन प्रक्रिया में 'प्रतिपुष्टि' का क्या अर्थ है?

प्रश्न 10 :- 'अपुष्ट समाचार' (ग्रेपवाइन) का क्या अर्थ है?

3 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 11 :- निर्देशन प्रबन्ध का सबसे कम महत्वपूर्ण कार्य है। क्या आप इस कथन से सहमत है? अपने उत्तर के समर्थन में कोई दो कारण दीजिए।

प्रश्न 12 :- ''प्रबन्धकों की श्रृंखला में पर्यवेक्षक का पद समाप्त कर देना चाहिए।'' क्या आप सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई तीन कारण दीजिए?

प्रश्न 13 :- वर्णन करें कि पर्यवेक्षण नियंत्रण में कैसे सहायक है?

प्रश्न 14 :- अभिप्रेरणा सकारात्मक व नकारात्मक हो सकती है। कैसे?

प्रश्न 15 :- अभिप्रेरणा संगठन में अनुपस्थिति दर घटाने में सहायक है। स्पष्ट कीजिए?

4 तथा 5 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 16 :- निर्देशन के किन्हीं चार सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 17 :- अभिप्रेरणा की कोई चार विशेषताएं लिखिए।

प्रश्न 18 :- गैर-मौद्रिक अभिप्रेरक के रूप में 'कार्य सम्पन्नता तथा सेवा सुरक्षा को समझाइए।

प्रश्न 19 :- प्रबन्ध के निर्देशन कार्यो के रूप में नेतृत्व के महत्व का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 20 :- प्रभावपूर्ण संप्रेषण को बाधित करने वाले कोई चार संभावित तत्वों का वर्णन कीजिए।

6 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 21 :- 'पर्यवेक्षण निर्देशन कार्य का एक महत्वपूर्ण अंग है'। उपरोक्त कथन के सर्मथन में किन्हीं चार कारणों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 22 :- कम्पनी के कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रयोग में आने वानी विभिन्न वित्तीय तथा गैर-वित्तीय प्रोत्साहनों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 23 :- ''नेतृत्व की प्रभावपूर्णता नेता के गुणों पर निर्भर करती है।'' एक नेता के ऐसे किन्ही चार गुणों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 24 :- एक संगठन में अनेक नेता हैं। लेकिन एक अच्छा नेता दूसरों से भिन्न होना चाहिए। कोई चार गुण सुझाएं जो एक अच्छे नेता में होने चाहिए।

प्रश्न 25 :- सम्प्रेषण प्रक्रिया के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

अध्याय 8

नियन्त्रण

नियन्त्रण से तात्पर्य संगठन में नियोजन के अनुसार क्रियाओं के निष्पादन से है। नियन्त्रण इस बात का आश्वासन है कि संगठन के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी संसाधनों का उपयोग प्रभावी एवं दक्षतापूर्ण ढंग से हो रहा है।

नियन्त्रण से निष्पादन एवं मानकों के विचलन का ज्ञान होता है, इन विचलनों का विश्लेषण करता है तथा उन्हीं के आधार उसके सुधार के लिए कार्य करता है।

नियन्त्रण का महत्व :-

(1) नियन्त्रण संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करता है :- नियन्त्रण संगठन के लक्ष्यों की ओर प्रगति का मापन करके विचलनों का पता लगता है। यदि कोई विचलन प्रकाश में आता है तो उसका सुधार करता है।

(2) मानकों की यथार्थता को आँकना :- एक अच्छी नियन्त्रण प्रणाली द्वारा प्रबन्ध निर्धारित मानकों की यर्थथता तथा उद्देश्य पूर्णता को सत्यापित कर सकता है।

(3) संसाधनों का कुशलतम प्रयोग करने में सहायता :- नियन्त्रण प्रक्रिया द्वारा एक प्रबन्धक संसाधनों का व्यर्थ जाना कम कर सकता है।

(4) कर्मचारियों की अभिप्रेरणा में सुधार :- एक अच्छी नियन्त्रण प्रणाली में कर्मचारियों को पहले से यह ज्ञात होता है कि उन्हें क्या करना है

(5) कार्य में समन्वय की सुविधा :-नियन्त्रण में प्रत्येक विभाग व कर्मचारी निर्धारित मानकों से बंधा होता है तथा वे आपस में सुव्यवस्थित ढंग से एक दूसरे से भली-भाँति समन्वित होते है।

(6) आदेश व अनुशासन की सुनिश्चितता :- नियन्त्रण संगठन में आदेश तथा अनुशासन का वातावरण बनाता है। इसके द्वारा कर्मचारियों की गतिविधियों पर निगरानी रखी जा सकती है।

नियन्त्रण की सीमाएँ/दोष

(1) बाह्य घटकों पर अल्प नियन्त्रण :- सामान्यतौर पर एक संगठन बाहरी घटकों जैसे सरकारी नीतियाँ, तकनीकी नियन्त्रण प्रतियोगिता आदि पर नियन्त्रण नहीं रख पाता।

(2) कर्मचारियों से प्रतिरोध :- अधिकतर कर्मचारी नियन्त्रण का विरोध करते है उनके अनुसार नियन्त्रण उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध है।

(3) मंहगा सौदा :- नियन्त्रण में खर्चा, समय तथा प्रयास की मात्रा अधिक होने के कारण यह एक मंहगा सौदा है।

(4) परिमाणात्मक मानकों के निर्धारण में कठिनाई :- जब मानकों को परिमाणात्मक शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता तो नियन्त्रण प्रणाली का प्रभाव कम हो जाता है।

नियोजन एवं नियन्त्रण में सम्बन्ध :- नियोजन और नियन्त्रण दोनों ही परस्पर सम्बधित है तथा दोनों ही एक दूसरे को बल प्रदान करते है जैसे :-

(क) नियोजन जिन तत्वों पर आधारित होता है ये ही नियन्त्रण को सुगम तथा प्रभावी बनाते है।

(ख) नियन्त्रण नियोजन को पिछले अनुभव की सूचनाएँ देकर भविष्य में सुधार लाता है।

नियन्त्रण प्रक्रिया :-

(1) निष्पादन मानकों का निर्धारण :- मानक एक मानदंड है जिसके तहत वास्तविक निष्पादन की माप की जाती है अत: मानक मील के पत्थर के समान होता है।

(2) वास्तविक निष्पादन की माप :- निष्पादन की माप उद्देश्यपूर्ण तथा विश्वसनीय विधि से होनी चाहिए इसमें व्यक्तिगत देख रेख, नमूना जांच आदि है।

(3) वास्तविक निष्पादन की मानकों से तुलना :- इस कार्यवाही में वास्तविक निष्पादन की तुलना निर्धारित मानकों से की जाती है। ऐसी तुलना में अन्तर हो सकता है।

(4) विचलन विश्लेषण :- मानकों द्वारा विचलनों का पता लगाया जाता है तथा विश्लेषण किया जाता है ताकि विचलनों के कारणों को पहचाना जा सकें।

(5) सुधारात्मक कार्यवाही करना :- यह नियन्त्रण प्रक्रिया का अंतिम चरण है। यदि विचलन अपनी निर्धारित सीमा के अन्दर है तो किसी सुधारात्मक कार्यवाही आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रबन्धकीय नियन्त्रण की तकनीकें

पारम्परिक नियन्त्रण तकनीकें	**आधुनिक नियंत्रण तकनीके**
व्यक्तिगत निरीक्षण	विनियोगों पर आय
सांख्यकीय रिपोर्ट	अनुपात विश्लेषण
बिना लाभ हानि व्यापार विश्लेषण	उत्तरदायित्व लेखांकन
बजटीय नियन्त्रण	प्रबन्ध अंकेक्षण
	प्रबन्ध सूचना विधि
	पी. इ. आर. टी एवं सी. पी. एम

पारम्परिक तकनीकें :- पारम्परिक तकनीकों से तात्पर्य उन तकनीकों से है जिनका उपयोग कम्पनियाँ लम्बे समय से करती चली आ रही है तथा अभी भी इनका प्रयोग कर रही है।

आधुनिक तकनीकें :- इन तकनीकों का जन्म अभी अभी हुआ है। इन तकनीकों से उन नई का विचार धाराओं को जन्म मिलता है जिनके माध्यम से संगठन के विभिन्न क्षेत्रों में उचित नियन्त्रण किया जा सकता है।

बजटीय नियन्त्रण :- यह एक व्यवस्था है जिसमें नियंत्रण के उददेश्यों के बजटों का प्रयोग किया

जाता है। अर्थात् जब एक व्यवसायिक संस्था की विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रण करने के लिए बजटों का प्रयोग किया जाता है तो इसे बजटीय नियंत्रण कहते है। उदाहरण :- विक्रय बजट, निर्माण बजट इत्यादि।

(क) अतिलघुस्तरीय प्रश्न :- (1 अंक वाले प्रश्न)

प्रश्न 1 :- नियन्त्रण का अर्थ समझाइए?

प्रश्न 2 :- नियन्त्रण प्रक्रिया का पहला चरण कौन सा है?

प्रश्न 3 :- अच्छी नियन्त्रण प्रणाली की एक विशेषता बताइये?

प्रश्न 4 :- विचलनों के दो प्रकार लिखिए?

प्रश्न 5 :- कौन सा सिद्धान्त इस विचार पर आधारित होता है कि प्रत्येक चीज का नियन्त्रण करने की कोशिश का अन्त कुछ भी नियन्त्रण न कर पाने में होता है?

(ख) लघुस्तरीय प्रश्न :- (3-4 अंक वाले प्रश्न)

प्रश्न 6 :- ''नियोजन का कार्य आगे की ओर देखना है जबकि नियन्त्रण पीछे की ओर देखता है'' समझाइए।

प्रश्न 7 :- ''नियन्त्रण कार्य प्रबन्ध का सर्वव्यापी कार्य है'' व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 8 :- बजटरी नियन्त्रण से आप क्या समझते है?

प्रश्न 9 :- ''सुधारात्मक कार्यवाही नियन्त्रण का सार है'' व्याख्या कीजिए।

(ग) दीर्घ स्तरीय प्रश्न (5-6 अंक वाले प्रश्न)

प्रश्न 10 :- नियन्त्रण प्रक्रिया में शामिल विभिन्न चरण समझाइए।

प्रश्न 11 :- संगठन में नियन्त्रण के महत्व की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 12 :- समविच्छेद विश्लेषण क्या है? यह किस प्रकार प्रभावी नियन्त्रण तकनीक है।

प्रश्न 13 :- नियोजन एवं नियन्त्रण एक दूसरे के पूरक है 'कैसे स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 14 :- बजटरी नियन्त्रण के क्या लाभ व हानियाँ है?

प्रश्न 15 :- नियन्त्रण की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 16 :- किन्हीं दो पारम्परिक नियन्त्रण तकनीकों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 17 :- किन्हीं दो आधुनिक नियन्त्रण तकनीकों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 9

व्यावसायिक वित्त

परिचय :- व्यावसायिक गतिविधियों को संचालित करने हेतु जिस धन की आवश्यकता होती है उसे व्यावसायिक वित्त कहते हैं। वित्त की आवश्यकता, व्यवसाय के स्थापन, संचालन, आधुनिकीकरण, विस्तार तथा विविधीकरण के लिए होती है।

वित्तीय प्रबन्ध को व्यवसाय में प्रयोग किये जाने वाले कोषों का नियोजन करने, प्राप्त करने, नियन्त्रण करने एवं प्रशासन करने से सम्बन्धित गतिविधि कहा जा सकता है। वित्तीय प्रबंध का संबंध इसकी इष्टतम उपलब्धता तथा वित्त के उपयोग से है। इसका उद्देश्य आवश्यकता के समय पर्याप्त कोषों को उपलब्ध कराने का विश्वास दिलाना भी होता है तथा अनावश्यक वित्त से बचाकर रखना होता है।

वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य अंशधारियों की धन संपदा को अधिकतम करना होता है जिसके लिए अनुकूलतम पूँजी संरचना तथा कोषों का उचित उपयोग आवश्यक है। प्रत्येक संगठन को निम्नलिखित तीन वित्तीय निर्णय लेने पड़ते है।

(1) निवेश निर्णय :- इस का संबध इस बात से होता है कि फर्म के कोषों को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों में कैसे विनियोजित किया जाए। निवेश निर्णय दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन हो सकता है। दीर्घकालीन निवेश निर्णयों को पूँजी बजटिंग निर्णय भी कहा जाता है। इनमें कोषों की बड़ी मात्रा लगती है तथा इन्हें बार-बार परिवर्तित नही किया जा सकता है क्योंकि इनका खर्च बहुत अधिक होता है। जबकि अल्पकालीन निवेश निर्णयों को 'कार्यशील पूंजी निर्णय' भी कहा जाता है जो व्यवसाय की दैनिक कार्यवाही को प्रभावित करते हैं।

(2) वित्तीयन संबंधी निर्णय :- यह निर्णय दीर्घकालीन स्त्रोतों से धन प्राप्त करने से सम्बन्धित होते है। दीर्घकालीन कोषों के मुख्य स्त्रोत अंशधारी कोष तथा उधारी निधियाँ है। उधारी निधियों पर कंपनी को पूर्व निश्चित दर से ब्याज निश्चित रूप से देना ही होता है, चाहे कम्पनी को लाभ हुआ हो या न हुआ हो। इनका पुनर्भुगतान भी एक निश्चित समय के उपरांत करना ही पड़ता है। भुगतान न करने की चूक को वित्तीय जोखिम कहा जाता है। जबकि अंशधारियों के प्रतिलाभ या पूंजी के पुनर्भुगतान की कोई वचनबद्धता नहीं होती है। एक फर्म वित्त के लिए अंशधारी कोष तथा उधारी निधियों दोनो का मिश्रण प्रयोग करती है।

(3) लाभांश निर्णय :- लाभांश, लाभ का वह भाग होता है जिसे अंशधारियों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक कम्पनी को यह निर्णय लेना होता है कि लाभ का कितना भाग अंशधारियों में लाभांश के रूप में वितरित करे तथा कितना भाग व्यवसाय में प्रतिधारित करे। लाभांश सम्बन्धी निर्णय लेते समय अंशधारियों की धन सम्पदा को अधिकतम करने के उद्देश्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

वित्तीय नियोजन :- व्यवसाय के लिए कोषों की आवश्यकता का अनुमान लगाने तथा कोषों के स्रोतों को निर्धारित करने की प्रक्रिया को वित्तीय नियोजन कहते है। इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि अपने वायदों को पूरा करने तथा योजनाओं के अनुसार कार्य करने के लिए फर्म के पास पर्याप्त कोष उपलब्ध है। वित्तीय नियोजन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :-

(1) सही समय पर कोषों की आवश्यकता अनुसार उपलब्धता को सुनिश्चि करना।

(2) यह देखना कि फर्म अनावश्यक रूप से संसाधनों (कोषों) में वृद्धि न करे।

पूंजी बजटिंग निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारक

(1) परियोजना का रोकड़ प्रवाह :- विभिन्न परियोजनाओं के जीवन काल के दौरान उनसे क्रमानुसार प्राप्त होने वाली रोकड़ तथा उन पर किये जाने वाले रोकड़ व्ययों के आधार पर उत्तम परियोजना का चुनाव किया जाना चाहिए।

(2) आय की दर :- किसी परियोजना की सबसे महत्वपूर्ण कसौटी उससे होने वाली आय तथा उसमें निहित जोखिम होता है। अत: परियोजना का चुनाव करते समय इन का ध्यान आवश्यक होता है।
(3) शामिल निवेश मानदण्ड :- विभिन्न निवेश प्रस्तावों का मूल्यांकन अनेक पूंजी बजटिंग तकनीकों के आधार पर किया जाता है निवेश की राशि, ब्याज की दर, रोकड़ प्रवाह तथा आय की दर आदि की गणना करनी पड़ती है।

वित्तीय निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक :-

(1) लागत :- विभिन्न स्त्रोतों से कोष प्राप्त करने की लागत भिन्न होती है। मितव्ययी स्त्रोत से ही कोष प्राप्त करने चाहिए।

(2) जोखिम :- विभिन्न स्त्रोतों में संबंधित जोखिम भिन्न होते है उधार लिए गए कोष में स्वामित्व कोष की अपेक्षा अधिक जोखिम होता है क्योंकि ऋण पर ब्याज देना पड़ता है तथा इसे लौटाना भी पड़ता है।

(3) प्रवर्तन लागत :- कोषों को प्राप्त करने में कुछ व्यय जैसे - दलाली, अभिगोपन व्यय, प्रविवरण पर व्यय, आदि करने पड़ते है जिन्हें प्रवर्तन लागत कहते है। जिस स्त्रोत की प्रवर्तन लागत अधिक होती है उसके प्रति आकर्षक कम होता है।

(4) रोकड़ प्रवाह स्थिति :- यदि कम्पनी की रोकड़ प्रवाह स्थिति अच्छी होती है तो वह आसानी से ऋण प्राप्त कर सकती है।

(5) नियंत्रण प्रतिफल :- यदि वर्तमान अंशधारी कम्पनी पर अपना नियंत्रण रखना चाहते है तो उधारी निधियों के रूप में कोष प्राप्त किये जा सकते है। इसके विपरीत समता अंशों के निगर्मन से व्यवसाय पर प्रबंध का नियंत्रण ढीला हो जाता है।

(6) पूँजी बाजार की स्थिति :- तेजी के दौर में समता प्रतिभूतियों को आसानी से बेचा जा सकता है। जबकि मंदी के दौरान ऋण प्रतिभूतियों की माँग अधिक होती है।

लाभांश निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारक

(1) उपार्जन (आय) :- जिन कम्पनियों की आय स्थाई तथा अधिक होती है वे अधिक लाभांश दे सकती है क्योंकि लाभांश वर्तमान तथा भूतकालीन उपार्जनों में से दिया जाता है।

(2) लाभांश की स्थिरता :- प्राय: कम्पनियां स्थायी लाभांश नीति अपनाती है। उपार्जन में थोड़ी कमी या वृद्धि के कारण लाभांश पर प्रभाव नहीं पड़ता।

(3) विकास सम्भावना :- यदि निकट भविष्य में कम्पनी के विकास की सम्भावना होती है तो उपार्जन के अधिकांश भाग को वह अपने पास प्रतिधारित राशि के रूप में रख लेती है। अत: कम लाभांश दिया जायेगा।

(4) रोकड़ प्रवाह स्थिति :- लाभांश के कारण रोकड़ का बहिर्गमन होता है, अत: पर्याप्त रोकड़ की उपलब्धता होने पर ही लाभांश दिया जा सकता है।

(5) अंशधारियों की प्राथमिकता :- लाभांश नीति का निर्धारण करते समय अंशधारियों की प्राथमिकता को भी ध्यान में रखा जाता है। यदि अंशधारी लाभांश की अपेक्षा रखते है तो कम्पनी लाभांश दे सकती है।

(6) करारोपण नीति :- कम्पनी द्वारा दिये जाने वाले लाभांश पर उसे कर देना पड़ता है अत: कर की दर अधिक होने पर कम्पनी कम लाभांश देती है, जबकि कर की दर कम होने पर कम्पनी अधिक लाभांश दे सकती है।

पूंजी संरचना :-

पूंजी संरचना से अभिप्राय स्वामिगत तथा ग्रहीत निधि उधार कोषों के मिश्रण से है। एक अनुकूल पूंजी संरचना वह होती है जिसमें ऋण एवं समता का अनुपात ऐसा होता है जिससे कि समता अंशो के मूल्य तथा अंश धारकों की धनराशि बढ़ती है।

एक फर्म की समस्त पूंजी में ऋण के अनुपात को वित्तीय उत्तोलक अथवा पूँजी मिलान कहा जाता है। जब कुल पूंजी में समता अंशपूंजी का भाग कम तथा ऋणो का भाग अधिक होता है तो इसे उच्च मिलान कहा जाता है। जबकि कुल पूंजी में ऋणो का भाग कम होने पर निम्न मिलान कहा जाता है।

पूंजी संरचना को प्रभावित करने वाले कारक :-

(1) रोकड़ प्रवाह स्थिति :- यदि कम्पनी की रोकड़ प्रवाह स्थिति अच्छी होती है तो वह आसानी से ऋण के माध्यम से कोष प्राप्त कर सकती है।

(2) ब्याज आवरण अनुपात :- इसके द्वारा यह दर्शाया जाता है कि ब्याज तथा कर काटने से पूर्व लाभ की मात्रा ब्याज से कितने गुना अधिक है। इसके अधिक होने पर कम्पनी ऋणो के माध्यम से वित्त प्राप्त कर सकती है।

(3) निवेश पर आय :- यदि ब्याज की दर से निवेश पर प्राप्त आय की दर अधिक होती है तो ऋणो के माध्यम से कोष प्राप्ति अधिक लाभदायक होगी।

(4) प्रवर्तन लागतें :- यह वे लागतें होती है जो अंशो या ऋणपत्रों को निर्गमित किये जाने पर आती है जैसे विज्ञापन व्यय, प्रविवरण की छपाई, अभिगोपन आदि कोषो के लिए प्रयोग की जाने वाली प्रतिभूतियों का चुनाव करते समय प्रवर्तन लागतों का ध्यान रखना चाहिए।

(5) नियंत्रण :- यदि वर्तमान अंशधारी कम्पनी पर अपना नियंत्रण रखना चाहते है तो ऋणो के माध्यम से कोष प्राप्त किये जा सकते है। परन्तु समता अंशों के निर्गमन से व्यवसाय पर प्रबंध का नियंत्रण ढीला हो जाता है।

(6) कर की दर :- ऋणो पर ब्याज को कटौती के रूप में स्वीकार किया जाता है। अत: कर दर अधिक होने पर ऋणों के माध्यम से कोष प्राप्त किये जाने चाहिए परन्तु कर दर कम होने पर अंशो के माध्यम से कोष प्राप्त किये जाने चाहिए।

उपरोक्त के अलावा ऋणो की लागत, अंशो की लागत, लोचशीलता, जोखिम आदि अन्य कारक है जो पूँजी संरचना को प्रभावित करते है।

स्थायी पूँजी तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक :- दीर्घकालीन सम्पत्तियों में किये गये निवेश को स्थायी पूँजी कहा जाता है, जो एक लम्बे समय तक प्रयोग की जाती है अत: स्थाई सम्पत्तियों को दीर्घकालीन वित्तीय स्त्रोतों से ही प्राप्त करना चाहिए। स्थायी पूंजी में बड़ी मात्रा में कोष लगाए जाते है तथा ऐसे निर्णयों को भारी क्षति उठाये बिना नही बदला जा सकता है। स्थिर पूंजी को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित है :-

(1) व्यवसाय की प्रकृति :- एक निर्माणी उपक्रम को स्थाई सम्पत्तियों, संयंत्र, मशीनों आदि की अधिक आवश्यकता होती है अत: व्यापारिक उपक्रम के मुकाबले निर्माणी उपक्रम को अधिक स्थायी पूँजी की आवश्यकता होती है।

(2) संक्रिया का मापदंड :- बड़े स्तर पर कार्य करने वाले संगठनों को छोटे स्तर पर कार्य करने वाले संगठनों के मुकाबले अधिक स्थाई पूँजी की आवश्यकता होती है। क्योंकि उन्हें बड़ी-बड़ी मशीनों की आवश्यकता होती है।

(3) तकनीक का विकल्प :- पूँजी प्रधान तकनीक का प्रयोग करने वाले संगठनों को श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग करने वाले संगठनों से अधिक स्थाई पूँजी आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि उन्हें बड़ी-बड़ी मशीनें लेनी पड़ती है।

(4) तकनीकी उत्थान :- जिन उद्योगों में सम्पत्तियाँ शीघ्र ही अप्रचलित हो जाती है उन्हें अन्य संगठनों/उद्योगों के मुकाबले अधिक स्थाई पूंजी की आवश्यकता पड़ती है।

(5) विकास प्रत्याशा :- ऐसी संस्थाएं जिनके पास उच्च विकास योजना होती है उन्हे अधिक स्थिर पूंजी की आवश्यकता होती है क्योंकि उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए नये संयंत्र आदि क्रय करने होते है।

(6) विविधीकरण :- यदि कोई कम्पनी विविधीकरण प्रक्रिया को अपनाती है तो संयंत्र व मशीनों के लिए उसे अधिक स्थाई पूंजी की आवश्यकता होती है।

कार्यशील पूँजी तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक

कार्यशील पूंजी वह पूंजी होती है जिस के माध्यम से दैनिक संचालन क्रियाओं को सुगम रूप में संचालित रखने में व्यवसाय को सहायता प्राप्त होती है। स्थाई संपत्तियों में निवेश के अलावा प्रत्येक व्यावसायिक संगठन को चालू सम्पत्तियों में भी निवेश की आवश्यकता होती है जिन्हें एक वर्ष में रोकड़ या रोकड़ के समतुल्यों में परिवर्तित किया जा सकता है। ये सम्पत्तियां व्यवसाय को तरलता प्रदान करती है। कार्यशील पूँजी दो प्रकार की होती है - **सकल कार्यशील पूँजी** तथा **शुद्ध कार्यशील** पूँजी। सभी चालू सम्पत्तियों में किये गए निवेश को सकल कार्यशील पूँजी कहते है। जबकि चालू दायित्व पर चालू सम्पत्तियों के आधिक्य को शुद्ध कार्यशील पूँजी कहते है। एक संगठन की कार्यशील आवश्यकताओं को निम्नलिखित कारकों द्वारा प्रभावित किया जाता है।

(1) व्यवसाय की प्रकृति :- एक व्यापारिक उपक्रम को, निर्माणी उपक्रम के मुकाबले कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इनके द्वारा वस्तु निर्माण सम्बन्धित कोई कार्य नहीं करना पड़ता। ये केवल माल का क्रय एवं विक्रय करते है।

(2) संचालन का स्तर :- ऐसे संगठन जो उच्च पैमाने पर व्यवसाय चलाते है उन्हें बड़ी मात्रा में स्कन्ध की आवश्यकता होती है अत: उन्हें अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। जिन संगठनों का व्यापारिक संचालन निम्न कोटि का होता है उन्हें कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(3) व्यवसाय चक्र :- तेजी की दशा में व्यावसायिक गतिविधियाँ बढ़ जाती है अत: अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है, जबकि मन्दी के दौर में कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(4) मौसमी घटक :- मौसम के चरम या शीर्ष स्तर पर मौसमी व्यवसाय जैसे आइसक्रीम फैक्ट्री को अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। जबकि मौसम समाप्त हो जाने पर कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

(5) उधार विक्रय सुविधा :- उधार नीति अपनाने पर अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है परन्तु नकद माल बेचने पर कार्यशील पूँजी की आवश्यकता कम होती है।

(6) उधार क्रय सुविधा :- यदि कम्पनी कच्चे माल आदि का उधार क्रय करती है तो उसे कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है परन्तु नकद क्रय करने पर अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त के अलावा विकास प्रत्याशा, प्रतियोगिता का स्तर, मुद्रा स्फीति आदि अन्य कारक भी कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं को प्रभावित करती है।

समता पर व्यापार अवधारणा

समता पर व्यापार से आशय समता अंशधारियों द्वारा अर्जित लाभ में वृद्धि का होना है। जिसका कारण स्थाई वित्त व्यय जैसे ब्याज की मात्रा को परिरक्षित रखना है। समता पर व्यापार तब होता है जब आयों की दर उस लागत से अधिक होती है जिस पर कोषों को उधार लिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप

अंशधारियों को प्रतिअंश उच्च दर से लाभांश प्राप्त होता है।

एक अंक वाले प्रश्न

(1) उस अवधारणा का नाम बताईए जिसके कारण पूँजी संरचना में परिवर्तन कर के समता अंशों की आय की दर बढ़ जाती है।

(2) एक कम्पनी नई इकाई स्थापित करना चाहती है जिसमें रू. 10 लाख की मशीनरी लगेगी। वित्तीय प्रबन्ध में शामिल निर्णय का प्रकार बताइए।

(3) वित्तीय प्रबन्ध का प्राथमिक उद्देश्य क्या है?

(4) वित्तीय जोखिम से क्या अभिप्राय है?

(5) सेवा उद्योग में कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता क्यों होती है।

तीन/चार अंक वाले प्रश्न

(1) पूंजी बजटिंग निर्णयों से क्या अभिप्राय है? इन्हें प्रभावित करने वाले तीन कारकों का वर्णन कीजिए?

(2) वित्तीय नियोजन से क्या अभिप्राय है। इसके उद्देश्य बताईए?

(3) वित्तीय प्रबन्ध को परिभाषित करते हुए उसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए?

(4) वित्तीय उत्तोलन तथा समता पर व्यापार का वर्णन कीजिए।

(5) एक संगठन द्वारा लिये जाने वाले विभिन्न वित्तीय निर्णयों का वर्णन कीजिए।

पाँच/छः अंक वाले प्रश्न

(1) पूँजी संरचना से क्या अभिप्राय है? इसे प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए।

(2) स्थाई पूँजी आवश्यकताओं का प्रभावित करने वाले छः कारको का वर्णन कीजिए।

(3) चालू कार्यशील पूंजी से क्या अभिप्राय है? इसे प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए।

(4) लाभांश निर्णयों से क्या अभिप्राय है? इन्हें प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए।

(5) निम्नलिखित निर्माणी उपक्रम में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पर सुझाव दीजिए।

(क) ब्रेड (ख) चीनी (ग) कूलर (घ) मोटर कार (च) लोकोमोटिव (छ) विशिष्ट आदेश पर निर्मित फर्नीचर।

अध्याय 10

वित्त बाजार

परिचय :- वित्तीय बाजार वित्तीय सम्पत्तियों जैसे अंश, बांड आदि के सृजन एवं विनिमय करने वाला बाजार होता है। यह बचतों को गतिशील बनाता है तथा उन्हें सर्वाधिक उत्पादक उपयोगों की ओर ले जाता है। यह बचतकर्ताओं तथा उधार प्राप्तकर्ताओं के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है तथा उनके बीच कोषों को गतिशील बनाता है। वह व्यक्ति/संस्था जिसके माध्यम से कोषों का आबंटन किया जाता है उसे वित्तीय मध्यस्थ कहते है। वित्तीय बाजार के निम्नलिखित कार्य होते है।

(1) बचतों को गतिशील बनाना तथा उन्हें अधिकाधिक उत्पादक उपयोग में सरणित करना :- वित्तीय बाजार बचतों को बचतकर्ता से निवेशकों तक अंतरित करने को सुविधापूर्ण बनाता है। अत: यह अधिशेष निधियों को सर्वाधिक उत्पादक उपयोग में सरणित करने में मदद करते है।

(2) कीमत निर्धारण में सहायक :- वित्तीय बाजार बचतकर्त्ता तथा निवेशकों को मिलता है। बचतकर्ता कोषों की पूर्ति करते है जबकि निवेशक कोषों की मांग करते है जिसके आधार पर वित्तीय सम्पत्तियों को कीमत का निर्धारण होता है।

(3) वित्तीय सम्पत्तियों को तरलता प्रदान करना :- वित्तीय बाजार द्वारा वित्तीय सम्पत्तियों के क्रय-विक्रय को सरल बनाया जाता है। इसके माध्यम से वित्तीय सम्पत्तियों को कभी भी खरीदा या बेचा जा सकता है।

(4) लेन-देन की लागत को घटाना :- वित्तीय बाजार, प्रतिभूतियों के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराते है जिससे समय, प्रयासों एवं धन की बचत होती है। परिणाम स्वरूप लेन-देन की लागत घट

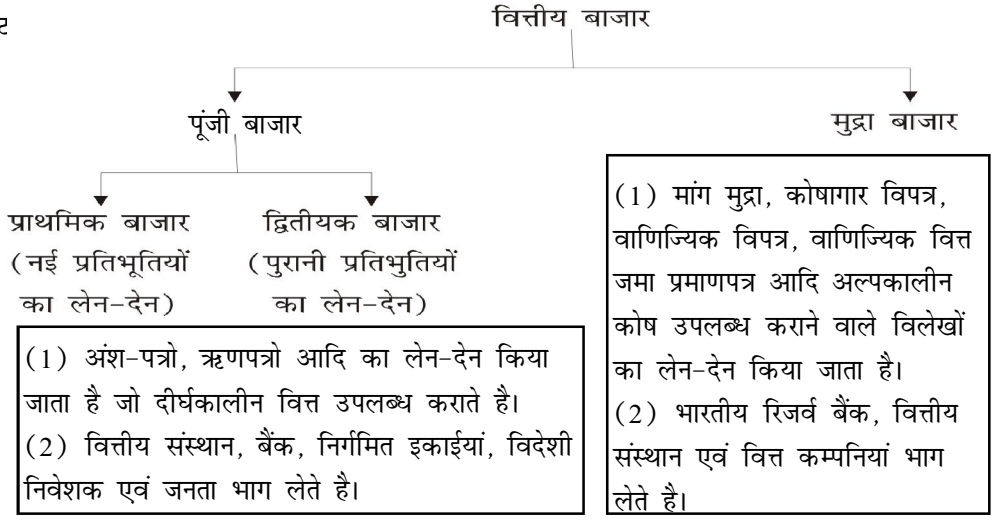

मुद्रा बाजार :- यह छोटी अवधि की निधियों का बाजार है जिनकी परिपक्वता अवधि एक वर्ष तक की होती है। इस बाजार के प्रमुख प्रतिभागी भारतीय रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, गैर बैंकिग, वित्त कम्पनियाँ, राज्य सरकारें, म्युचुअल फंड आदि है। मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण प्रलेख निम्नलिखित है।

(1) राजकोष/कोषागार प्रपत्र (ट्रेजरी बिल) :- इन्हें केन्द्रीय सरकार की तरफ से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किया जाता है जिन की परिपक्व अवधि एक वर्ष से कम होती है। इन्हें अंकित मूल्य से कम पर जारी किया जाता है परन्तु भुगतान के समय अंकित मूल्य दिया जाता है। राजकोष बिल 25000 रू. के न्यूनतम मूल्य और इसके बाद बहुगुणन में प्राप्त होते है।

(2) वाणिज्यिक (तिजारती) पत्र :- यह एक अल्पकालिक आरक्षित वचन पत्र होता है जिन्हें विशाल एवं उधार पात्रता कम्पनियों द्वारा अल्पकालिक बाजार दर से कम दर पर निधि उगाहने के लिए जारी किया जाता है। इनकी परिपक्वता अवधि प्राय: 15 दिन से लेकर एक वर्ष तक होती है तथा ये विनिमय साध्य एवं हस्तान्तरणीय होते है।

(3) शीघ्रावधि द्रव्य (मांग मुद्रा) :- यह एक लघुकालिक माँग पर पुर्नभुगतान वित्त है जिसकी परिपक्वता अवधि एक दिन से 15 दिन तक की होती है तथा अंतर बैंक अंतरण के लिए उपयोग किया जाता है जिससे भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार नकद रिजर्व अनुपात बनाया जा सके। शीघ्रावधि द्रव्य ऋण पर जो ब्याज दिया जाता है उसे शीघ्रावधि दर कहा जाता है।

(4) बचत/जमा प्रमाण पत्र :- यह एक धारक प्रमाणपत्र होता है जो बेचनीय होता है तथा जिसे वाणिज्यिक बैंको एवं विकास वित्त संस्थानों द्वारा जारी किया जाता है। इनके द्वारा अल्पावधि के लिए बड़ी राशि प्राप्त की जा सकती है। इनकी समता अवधि 91 दिन से एक वर्ष होती है।

(5) वाणिज्यिक बिल :- यह एक विनिमय प्रपत्र होता है जो व्यावसायिक फर्मो की कार्य पूंजी की आवश्यकता के लिए वित्तीयन में प्रयुक्त होता है। इनका प्रयोग उधार क्रय विक्रय की दशा में किया जाता है। इसे विक्रेता द्वारा क्रेता पर लिखा जाता है। जब क्रेता इसे स्वीकार करता है तो यह विपत्र विपणन योग्य विलेख बन जाता है तथा इसे व्यापारिक/वाणिज्यिक विपत्र कहते हैं इसे देय तिथि से पहले बट्टे पर बैंक से भुनाया जा सकता है।

पूँजी बाजार :- यह दीर्घकालिक निधियों जैसे ऋणपत्रों तथा अंशपत्रों का बाजार है जो एक लम्बे समय के लिए जारी की जाती है। इस के अंतर्गत विकास बैंक, वाणिज्यिक बैंक तथा स्टॉक एक्सचेंज समाहित होते है। पूँजी बाजार को दो भागों में बाँटा जा सकता है। (1) प्राथमिक बाजार (2) द्वितीयक बाजार

प्राथमिक बाजार :- इसे नए निर्गमन बाजार के रूप में भी जाना जाता है। यहाँ केवल नई प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है जिन्हें पहली बार जारी किया जाता है। इस बाजार में निवेश करने वालों में बैंक, वित्तीय संस्थाएँ, बीमा कम्पनियाँ, म्युचुअल फण्ड एवं व्यक्ति होते है। इस बाजार का कोई निर्धारित भौगोलिक स्थान नही होता है।

द्वितीयक बाजार :- इसे स्टॉक एक्सचेंज या स्टॉक बाजार के नाम से भी जाना जाता है। जहाँ विद्यमान प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय किया जाता है। यह बाजार निर्धारित स्थान पर स्थित होता है तथा

यहाँ प्रतिभूतियों की कीमत को उन की माँग एवं पूर्ति के द्वारा तय किया जाता है।

प्राथमिक बाजार में प्रतिभूतियों को निर्गमित करेन की विधियाँ :-

(1) विवरण पत्रिका के माध्यम से प्रस्ताव :- इसके अन्तर्गत विवरण पत्रिका जारी करके जनता से अंशदान आमंत्रित किया जाता है। एक विवरण पत्रिका पूँजी उगाहने के लिए निवेशकों से प्रत्यक्ष अपील करती है जिसके लिए अखबारों एवं पत्रिकाओं के माध्यम से विज्ञापन जारी किए जाते है।

(2) विक्रय के लिए प्रस्ताव :- इस विधि के अन्तर्गत निर्गमन गृहों या ब्रोकर्स जैसे माध्यकों के द्वारा प्रतिभूतियों को बिक्री के लिए प्रस्तावित किया जाता है। कम्पनी द्वारा ब्रोकर्स को सहमति मूल्य पर प्रतिभूतियों को बेचा जाता है जिन्हें वो निवेशक जनता को अधिक मूल्य पर पुनः विक्रय करते है।

(3) निजी नियोजन :- एक कम्पनी द्वारा संस्थागत निवेशकों तथा कुछ चयनित वैयक्तिक निवेशकों को प्रतिभूतियों का आवंटन करने की प्रक्रिया को निजी नियोजन कहा जाता है।

(4) अधिकार निर्गम :- यह एक विशेषाधिकार है जो विद्यमान शेयर धारकों को पहले से क्रय किए हुए शेयरों के अनुपात में नए शेयरों को खरीदने का अधिकार देता है।

(5) ई - आरंभिक सार्वजनिक निर्गम :- यह स्टॉक एक्सचेन्ज की ऑन-लाइन प्रणाली के माध्यम से प्रतिभूतियाँ जारी करने की विधि है। स्टॉक एक्सचेंज की ऑन-लाइन प्रणाली के माध्यम से जनता को पूंजी को प्रस्तावित करने वाली कम्पनी को स्टॉक एक्सचेन्ज से एक ठहराव करना होता है जिसे ई-आरंभिक सार्वजनिक प्रस्ताव कहते है। इसके लिए सेबी के साथ पंजीयत दलालों को आवेदन स्वीकार करने हेतु नियुक्त किया जाता है।

पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में अन्तर

आधार	पूँजी बाजार	मुद्रा बाजार
1. सहभागी	वित्तीय संस्थाएँ, बीमा कम्पनियाँ बैंक, अर्न्तराष्ट्रीय निवेशक तथा व्यक्ति निवेशक	भारतीय रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, गैर बैंकिग वित्त कम्पनियाँ राज्य सरकारें, म्युचुअल फण्ड
2. मुख्य प्रपत्र	समता अंश, बाण्ड, ऋण पत्र, पूर्वाधिकारी अंश	कोषागार प्रपत्र, वाणिज्यिक पत्र मांग मुद्रा, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक बिल
3. निवेश राशि	निवेश हेतु बहुत बड़ी राशि की आवश्यकता नहीं होती है।	मुद्रा बाजार में लेन देन हेतु बहुत बड़ी राशि की आवश्यकता होती है।
4. परिपक्वता अवधि	मध्य तथा दीर्घ अवधि के कोषों में व्यवहार किया जाता है।	अल्प-अवधि वाले कोषों में व्यवहार किया जाता है।
5. तरलता	मुद्रा बाजार के मुकाबले कम तरलता होती है।	पूंजी बाजार के मुकाबले अधिक तरलता होती है।

6.	संभावित प्रतिफल	अधिक आय प्राप्त होने की सम्भावना	पूंजी बाजार के मुकाबले कम आय प्राप्त होने की सम्भावना।
7.	सुरक्षा	अधिक जोखिम होता है।	कम जोखिम होता है।

प्राथमिक बाजार तथा द्वितीयक बाजार में अन्तर

	प्राथमिक बाजार	द्वितीयक बाजार
1.	केवल नई प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है।	विद्यमान प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है।
2.	कम्पनी के प्रबन्ध के द्वारा प्रतिभूतियों की कीमत निर्धारित की जाती है।	प्रतिभूतियों की कीमत उनकी मांग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित की जाती है।
3.	इस बाजार का कोई निर्धारित भौगोलिक स्थान नही होता है।	ये बाजार निर्धारित स्थानों पर ही विद्यमान है।
4.	यहाँ केवल प्रतिभूतियों को क्रय किया जाता है।	यहाँ प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय दोनों होते है।
5.	यहाँ कम्पनी द्वारा सीधे या मध्यस्थ के माध्यम से प्रतिभूतियों को बेचा जाता है।	यहाँ निवेशक प्रतिभूतियों का स्वामित्व बदलते है।

स्टॉक एक्सचेंज/शेयर बाजार

स्टॉक एक्सचेंज एक ऐसा संस्थान है जो विद्यमान प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय हेतू एक मंच उपलब्ध कराता है। इसके माध्यम से प्रतिभूतियों जैसे अंश, ऋण पत्र आदि को मुद्रा में तथा मुद्रा को प्रतिभूतियों में परिवर्तित किया जा सकता है। स्टॉक एक्सचेंज के मुख्य कार्य निम्नलिखित है।

(1) विद्यमान प्रतिभूतियों को द्रवता एवं विनियोग उपलब्ध कराना :-स्टॉक एक्सचेन्ज द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय हेतु तैयार एवं सतत् बाजार उपलब्ध कराया जाता है।

(2) प्रतिभूतियों का मूल्यन :- स्टॉक एक्सचेंज निरन्तर मूल्यांकन द्वारा प्रतिभूतियों से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाऐं उपलब्ध कराता है जिससे उनके मूल्यन में सहायता मिलती है। प्रतिभूतियों की कीमत क्रेता तथा विक्रेता द्वारा उनकी मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा तय की जाती है। (3) लेन-देन की सुरक्षा :- शेयर बाजार की सदस्यता बेहतर प्रकार से नियंत्रित होती है तथा यहाँ विद्यमान कानूनी ढांचे के अनुसार ही कार्य होता है जो निष्पक्ष लेन-देन सुनिश्चित करता है।

(4) आर्थिक विकास में योगदान :- शेयर बाजार के माध्यम से बचतों को गतिशील बनाया जाता है तथा उन्हें सर्वाधिक उत्पादक निवेश पथों में सरणित किया जाता है। अत: यह पूंजी निर्माण एवं आर्थिक विकास में योगदान देता है।

(5) इक्विटी संप्रदाय का प्रसार :- शेयर बाजार जनता को प्रतिभूतियों में निवेश के बारे में शिक्षित करता है जिससे इक्विटी संप्रदाय का प्रसार होता है।

(6) सट्टेबाजी के लिए अवसर उपलब्ध कराना :- शेयर बाजार कानूनी प्रावधान के अंतर्गत प्रतिबंधित एवं नियंत्रित तरीके से सट्टा संबंधी क्रियाकलापों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध करता है।

स्टॉक एक्सचेंज में लेन देन की प्रक्रिया

(1) दलाल का चयन करना :- स्टॉक एक्सचेंज पर लेन-देन करने के लिए सर्वप्रथम दलाल का चयन किया जाता है, जो की स्टॉक एक्सचेंज का सदस्य होना चाहिए क्योंकि स्टॉक एक्सचेंज पर लेनदेन हेतु वही अधिकृत होते है।

(2) आदेश देना :- दलाल के चयन के बाद निवेशक प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय का आदेश देता है।

(3) आदेश का निष्पादन :- दलाल द्वारा निवेशक के आदेश के अनुसार प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय किया जाता है।

(4) निपटान :- स्टॉक एक्सचेंज में लेन-देन नकद आधार अथवा कैरी ओवर आधार (बदला) पर किए जाते है। वह अवधि जिसमें लेनदेन किए जाते है को आगे ले जाने को एकाउन्ट्स कहते है जो एक पखवाड़े से एक महा तक का हो सकता है। एक एकाउन्ट के दौरान सभी लेनदेन क्रय के भुगतान द्वारा तथा अंश प्रमाणपत्रों की सुपुर्दगी द्वारा निपटाये जाते है।

पहले शेयर बाजार में व्यापार एक सार्वजनिक चिल्लाहट या नीलामी प्रणाली मे माध्यम से किया जाता था। अब इसकी जगह ऑनलाइन स्क्रीन आधारित इलेक्ट्रॉनिक व्यापार प्रणाली ने ले ली है। इसके अतिरिक्त चोरी, धोखाधड़ी, अंतरण विलंबन आदि से बचने के लिए प्रतिभूतियों के अंतरण एवं भवन/धारण हेतु एक इलेक्ट्रॉनिक बुक प्रविष्टि प्रपत्र को प्रस्तुत किया है जिसे प्रतिभूतियों का विद्रव्यी अभौतिकीकरण कहते है।

भारत का राष्ट्रीय शेयर बाजार (*NSE*)

NSE अग्रणी वित्तीय संस्थानों, बैंको, बीमा कम्पनियों तथा अन्य वित्तीय मध्यस्थों द्वारा 1992 में स्थापित किया गया था। इसे अप्रैल 1993 में शेयर बाजार के रूप में मान्यता दी गई थी। इसने राष्ट्रव्यापी विस्तृत स्क्रीन आधारित स्वाचलित व्यापार प्रणाली, उच्च अंश की पारदर्शिता एवं समान पहुँच से उपलब्ध कराई है, बिना किसी भू-भौगोलिक स्थिति की सीमा में बँधे हुए *NSE* की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ हुई थी।

(1) सभी प्रकार की प्रतिभूतियों हेतु राष्ट्रव्यापी व्यापार सुविधा स्थापित करना।

(2) एक औचित्यपूर्ण संचार नेटवर्क के द्वारा पूरे देश भर में निवेशकों की समान पहुँच सुनिश्चित करना।

(3) लघु भुगतान चक्र तथा पुस्तक प्रविष्टि निपटान के योग्य बनाना।

(4) ई-व्यापार प्रणाली का उपयोग करते हुए एक निष्पक्ष सक्षमतापूर्ण तथा पारदर्शी प्रतिभूति बाजार उपलब्ध कराना।

(5) अतंर्राष्ट्रीय ऊचाइयों एवं मानकों को पूरा करना

NSE निम्नलिखित दो खंडो को बाजार उपलब्ध कराता है।

(क) थोक विक्रय ऋण बाजार खंड जो व्यापक दायरे की स्थिर आय प्रतिभूतियों के लिए एक व्यापार मंच प्रदान करता है जिसके अंर्तगत केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियाँ, राजकोष बिल, राज्य विकास ऋण, सार्वजनिक निगमों द्वारा बंध पत्र आदि आते है।

(ख) पूँजी बाजार खंड जहाँ अंशपत्र, ऋणपत्र आदि के साथ फुटकर सरकारी प्रतिभूतियों के लिए मंच उपलब्ध कराया जाता है।

भारतीय अधिप्रतिदावा पटल शेयर बाजार *(OTCEI)*

इसे यूटीआई, आईसीआईसीआई, एलआईसी, जीआईसी, आईडीबीआई, आईएफसीआई, एसबीआई पूंजी बाजार तथा कैन बैंक फाइनेंसियल सर्विसेज के द्वारा प्रोत्साहित किया गया है। इसे एक ऐसी जगह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहाँ क्रेता, विक्रेता की तलाश में रहता हैं या विक्रेता क्रेता की तलाश में रहता है तथा दोनो ही पार्टियों के लिए स्वीकार्य खरीद-फरोख्त के नियम व शर्ते व्यवस्थित करता है इसका उद्देश्य कम व्यापार की जाने वाली प्रतिभूतियों को एक स्थिर एवं निष्पक्ष मूल्य पर त्वरित द्रवता प्रदान करना है। इसमें लेनदेन कम्पयूटर नेटवर्क के माध्यम से होते है तथा इसका कोई भौगोलिक रूप से निश्चित स्थान नही है। ओटीसी बाजार के निम्नलिखित लाभ है।

(1) यह छोटी एवं कम द्रवता वाली कम्पनियों को एक व्यापार मंच उपलब्ध कराता है जो शेयर बाजार में सूचीबद्ध होने योग्य नही होती है।

(2) यह एक पारदर्शी व्यापार प्रणाली है जिसमें खराब या अधूरी डिलीवरी की समस्या नही है।

(3) परिवार संबंद्ध तथा निकटबद्ध कम्पनियां ओ.टी.सी के माध्यम से सार्वजनिक की जा सकती है।

(4) यह निवेशक को व्यापक स्वतंत्रता देता है। वह प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनो बाजारों में लेन-देन कर सकता है।

(5) यह लागत प्रभावी उपाय है, क्योंकि नए निगमों की लागत कम होती है तथा निवेशकों को सेवा देने हेतु कम खर्चा आता है।

NSEI तथा *OTCEI* में अन्तर करो

	आधार	एनएसईआई	ओटीसीईआई
1.	स्थापना	1992	1990
2.	चुकता पूंजी	दत्त पूँजी 3 करोड़ व अधिक	दत्त पूंजी 30 लाख रू व अधिक
3.	निपटान	15 दिनों के अन्दर	7 दिनों के अन्दर
4.	व्यवहार की जाने वाली प्रतिभूतियाँ	समता अंश, ऋणपत्र, खजाना बिल, कॉमर्शियल पेपर आदि	समता अंश, ऋणपत्र आदि

5.	उद्देश्य	राष्ट्रीय स्तर पर एक स्टॉक एक्सचेंज स्थापित करना	छोटी कम्पनियों के सूचियन की सुविधा उपलब्ध करवाना।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी)

भारत सरकार ने सेबी की स्थापना 12 अप्रैल 1988 को एक प्रशासकीय निकाय के रूप में की थी। जिसके द्वारा प्रतिभूति बाजार के नियमित एवं स्वस्थ वृद्धि तथा निवेशकों की संरक्षा को बढ़ावा प्रदान हो सके। 30 जनवरी 1992 को सेबी को एक अध्यादेश के द्वारा वैधानिक निकाय का दर्जा दिया गया तथा बाद में संसद के अधिनियम के रूप में सेबी अधिनियम के रूप में सेबी अधिनियम 1992 में बदल दिया गया। सेबी के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है।

(1) शेयर बाजार तथा प्रतिभूति उद्योग को विनियमित करना ताकि क्रमबद्ध ढंग से उनकी क्रियाशीलता को बढ़ावा मिले।

(2) निवेशकों को संरक्षण प्रदान करना तथा उनके अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना।

(3) व्यापार दुराचारों को रोकना तथा पूंजी बाजार को अधिक प्रतिस्पर्द्धी एवं पेशेवर बनाना।

(4) मध्यस्थों जैसे दलालों, मर्चेन्ट बैंकर्स आदि के लिए आचार संहिता विकसित करना तथा उन्हें विनियमित करना।

सेबी के कार्य

	विनियामक कार्य	**विकास कार्य**	**संरक्षणात्मक कार्य**
1)	नियम एवं अधिनियम बनाना	मध्यस्थों को प्रशिक्षण देना	आन्तरिक लेनदेनों को रोकना
2)	मध्यस्थों का पंजीयन करना	शोध कार्य करना तथा उपयोगी सूचनाओं का प्रकाशन	प्राथमिकता आबंटन को रोकना
3)	कम्पनियों के अधिग्रहण का विनियमन करना	निवेशकों को शिक्षित करना	अनुचित व्यापार व्यवहारों को रोकना
4)	सामूहिक निवेश योजनाओं तथा म्युचुअल फंडो का पंजीकरण।	इन्टरनेट ट्रेडिंग के लिए पंजीयन स्कन्ध दलालों की आज्ञा देना।	विनियोजकों का संरक्षण करना
5)	आंतरिक व्यापार एवं नियंत्रणकारी बोलियों पर नियंत्रण	लोचदार अभिगम अपनाकर पूँजी बाजार के विकास का कार्य	कीमत रिगिंग को रोकना
6)	अधिनियम अनुसार अधिशुल्क या कोई		प्रतिभूति बाजार से सम्बन्धित नियम अधिनियम बनाना।

अन्य प्रभार लगाना

एक अंक वाले प्रश्न

(1) वाणिज्यिक प्रपत्र की परिपक्वता अवधि क्या है?

(2) कोषागार विपत्र क्या है?

(3) एबी लि॰ ने अपने प्रत्येक 10 रू वाले समता अंशो को 12 प्रति अंश के हिसाब से निवेश बैंकों को बेचा, जिसने 20 रू. प्रति अंश की दर से सार्वजनिक निर्गमन का प्रस्ताव किया। चलायमान की इस विधि को बताइए?

(4) पूँजी बाजार के दो प्रमुख विलेख बताइए?

(5) कौन प्रतिभूति बाजार का रखवाला कहलाता है?

तीन/चार अंक वाले प्रश्न

(1) सेबी के संरक्षणात्मक कार्य बताइए?

(2) मुद्रा बाजार क्या है? इसके तीन विलेखो का वर्णन कीजिए।

(3) वाणिज्यिक पेपर तथा जमा प्रमाणपत्र से क्या अभिप्राय है।

(4) एनएसईआई *(NSEI)* तथा ओटीसीईआई *(OTCEI)* में निम्नलिखित के आधार पर अन्तर बताइए?

(क) कम्पनी का आकार (ख) लेनदेन वाली प्रतिभूतियाँ

(ग) उद्देश्य (घ) निपटान

(5) सेबी के किन्ही चार विनियामक कार्यो को बताइए?

(6) प्राथमिक बाजार तथा द्वितीयक बाजार के बीच कोई चार अन्तर करो।

पाँच/छः अंक वाले प्रश्न

1) स्टॉक एक्सचेन्ज के पाँच/छः कार्यो का वर्णन कीजिए।

2) सेबी को क्यो बनाया गया था? इसके विकासात्मक कार्य बताइए।

3) प्राथमिक बाजार में प्रतिभूतियों को निगर्मित करने की पाँच विधियों का वर्णन कीजिए।

4) स्टॉक एक्सचेंज में लेन देन की प्रक्रिया का वर्णन करो।

5) पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में निम्न के आधार पर अन्तर करो।

(क) सहभागी (ख) मुख्य प्रपत्र (ग) परिपक्वता अवधि (घ) संभावित प्रतिफल

(च) सुरक्षा (छ) तरलता

अध्याय 11

विपणन प्रबन्ध

परिचय

विपणन प्रबन्ध व्यापार का महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र है विपणन प्रबन्ध वस्तुओं तथा सेवाओं के नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा गतिविधियों के नियंत्रण की प्रक्रिया है ताकि ग्राहक की आवश्यकताएँ संतुष्ट की जा सके एवं संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

बाजार :- वह स्थान जहाँ क्रेता तथा विक्रेता मिलते है तथा क्रय विक्रय की गतिविधियाँ संपादित करते है।

आज क्रेता तथा विक्रेता एक स्थान पर मिले बगैर व्यापार कर सकते है - टेलीफोन द्वारा, पत्र द्वारा, इंटरनेट द्वारा।

विपणन :- यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जहाँ लोग मुद्रा अथवा कोई वस्तु जो उनके लिए महत्वपूर्ण हो, के बदले वस्तुओं एवं सेवाओं का आदान प्रदान करते है।

कोई भी वस्तु जो किसी दूसरे के लिए कीमती है, उसका विपणन किया जा सकता है।

1. भौतिक उत्पाद - टी. वी. सैल फोन आदि
2. सेवाएं - बीमा, शिक्षा आदि
3. विचार - खूनदान, परिवार नियोजन
4. व्यक्ति - विभिन्न पदों के लिए उम्मीदवारों का चुनाव
5. स्थान - 'आगरा' ताजमहल आदि।

विपणन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ

1. अपेक्षा एवं आवश्यकता :- व्यक्तियों तथा संगठनों की आवश्यकताओं तथा इच्छा की संतुष्टि
2. उत्पाद का सृजन :- उत्पाद तथा सेवाओं का सम्पूर्ण प्रस्ताव
3. ग्राहक के योग्य मूल्य :- ज्यादा लाभ/मुद्रा के बदले महत्व।
4. विनिमय पद्धति :- उत्पाद तथा सेवाओं का मुद्रा अथवा किसी मूल्यवान वस्तु के साथ आदान प्रदान।

विपणन के कार्य/विपणन गतिविधियाँ :-

1. विपणन अनुसंधान :- सूचनाओं को एकत्रित करना तथा विश्लेषण करना। ग्राहक क्या खरीदना चाहता है? कब खरीदना चाहता है। कितनी मात्रा में कहाँ से?
2. विपणन नियोजन :- विपणन योजनाओं का निर्माण जिसमें उत्पाद का स्तर बढ़ाने, उत्पादों का

संवर्धन करने इत्यादि की योजनाएँ शामिल होनी चाहिए तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए गतिविधियों का कार्यक्रम बनाना चाहिए।

3. उत्पाद का रूपांकन एवं विकास :- विपणन कर्ताओं को यह निर्णय लेना चाहिए कि किस उत्पाद का निर्माण करें? किस मॉडल तथा आकार का चुनाव करें? इत्यादि ताकि ग्राहक की आवश्यकताओ की संतुष्टि हो पाए।

4. क्रय तथा एकत्रीकरण :- जैसे कार, कच्चा माल जैसे स्टील, टायर बैटरियाँ, सीटें, स्टीयरिंग व्हील, बिजली के लैंप तार सामग्री, पेंट, छोटे रबड़ के हिस्से, पेच इत्यादि विभिन्न स्त्रोतों से खरीदता है तथा उसे पूर्ण उत्पाद (कार) में बदल देता है।

5. पैकेजिंग एवं लेबलिंग :- उत्पाद के लिए पैकेट तथा लेबलिंग का निर्माण

6. ब्रांडिग :- निर्माण कर्त्ता को पहचान पाने तथा प्रतियोगयों के उत्पाद से अलग पहचान बनाना उदाहरण :- विडियोकॉन वाशिंग मशीन।

विपणन की संकलपनाएँ/दर्शनशास्त्र

1) उत्पादन की अवधारणा :- बड़े स्तर पर उत्पादन कर लाभों को अधिकतम किया जा सकता है। अत: उत्पादन की औसतन कीमत घटाई जा सकती है। दोष :- ग्राहक हमेशा ऐसा उत्पाद नहीं खरीदना चाहता जो सस्ता हो

2) उत्पाद की अवधारणा :- व्यवसायिक क्रिया का केन्द्र बिन्दु अब निरंतर गुणवत्ता में सुधार तथा वस्तु को नया स्वरूप प्रदान करना हो गया है।

3) बिक्री की अवधारणा :- ग्राहक को उत्पाद खरीदने के लिए सहमत करने के लिए उसे समझना, ललचाना तथा आकर्षित करना आवश्यक है।

विपणन प्रबन्ध :- विपणन प्रबन्ध से तात्पर्य विपणन कार्यो का प्रबन्ध करना है। जैसे :- 1) लक्षित बाजार को चुनना, (2) मांग की उत्पत्ति (3) ग्राहक के लिए उच्च मूल्यों का निर्माण, विकास तथा संप्रेषण करना (4) बाजार अंश (5) साख (6) विपणन गतिविधियों का नियोजन तथा नियत्रंण करना।

विपणन मिश्रण :- विपणन मिश्रण से तात्पर्य उन तत्वों अथवा उपकरणों अथवा उन चरों से है जिन्हें विपणनकर्ता विशिष्ट बाजार में उतरने के लिए मिश्रित करता है।

विपणन मिश्रण के तत्व/घटक

1. उत्पाद मिश्रण - बहुउत्पादी उदाहरण :- हिन्दुस्तान लिवर लि॰ (कोलगेट, लाइफबॉय आदि)

तत्व :- ब्रांडिग, पैंकिग, लेबलिंग

2. कीमत मिश्रण - वह वैल्यू जिसे क्रेता उत्पाद अथवा सेवाएं उपलब्ध करवाने के बदले विक्रेता को अदा करता है।

तत्व :- कम्पनी के उद्देश्य, लागत, प्रतियोगिता, ग्राहकों की मांग

3. संवर्धन मिश्रण :- ग्राहकों को फर्म के उत्पादों की सूचना प्रदान करना एवं वह उत्पाद खरीदने

के लिए उकसाना।

तत्व :- व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन, लोकप्रियता, विक्रय संवर्धन

4. स्थान मिश्रण :- (भौतिक वितरण मिश्रण) वितरण से संबंधित निर्णय

(1) उपयोग किये जाने वाले विपणन मध्यस्थों के संबंध में निर्णय (जैसे थोक विक्रेता, खुदरा विक्रेता आदि)

(2) उत्पादक से उपभोक्ता के पास उत्पाद पहुँचाना।

(3) भण्डारण, परिवहन, कच्चे माल का प्रबन्ध आदि।

उत्पाद :- कोई भी वस्तु जिसे बाजार में आवश्यकता तथा जरूरतों को संतुष्ट करने के लिए प्रस्तावित किया जाता है।

वर्गीकरण

उपभोक्ता वस्तुएँ :- जो अंतिम उपभोक्ताओं अथवा उपयोगकर्ताओं द्वारा क्रय किए जाते है, ताकि उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ एवं इच्छाएं संतुष्ट हो सकें उदाहरण :- साबुन, खाद्यतेल, वस्त्र आदि। औद्योगित उत्पाद :- वह उत्पाद जिन्हें दूसरे उत्पाद बनाने के लिए आगत के रूप में प्रयोग किया जाता है :- कच्चामाल, मशीने आदि।

विस्तृत अध्ययन,

उत्पाद मिश्रण :- मुख्य तत्व निम्नलिखित है।

1. ब्रांडिंग :- को हम नाम, चिह्न, हस्ताक्षर अथवा उत्पाद के डिजाइन को प्रयोग करने की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट कर सकते है। उदाहरण :- पेप्सी, नाईकि आदि।

2. पैकेजिंग :- उत्पाद का डिब्बा अथवा कागज तैयार करना। अच्छी पैकिंग अकसर उत्पाद को बेचने में मदद करती है। इसलिए इसे शांत विक्रयकर्ता कहा जाता है।

3. लेबलिंग :- ग्राहक को उपलब्ध कराई जाने वाली सूचनाएँ जैसे तत्व, निर्माता, तिथि, निर्माण समय आदि। यह वस्तु के विक्रय संवर्धन, ग्रेडिंग एवं पहचानने में सहायता करता है।

मूल्य मिश्रण :- मूल्य से अभिप्राय उस भुगतान से होता है जो क्रेता वस्तुएँ या सेवाएँ क्रय करने के लिए विक्रेता को करता है।

मूल्य रणनीतियाँ :-

(1) मलाई उतारने वाली कीमत (प्राइस स्कीमिंग) :- प्रारंभिक अवस्था में उच्च कीमतें ताकि स्थिर लागत जल्दी वसूली जा सके।

(2) प्रवेश करने वाली कीमत (पैनेट्रेशन प्राईसिंग) :- कम मूल्य का उपयोग कर बड़े बाजार अंश पर कब्जा।

मूल्य निर्णय/मूल्य निर्धारण को प्रभावित करने वाले कारक :- (1) एक फर्म के उत्पाद तथा सेवाओं के मूल्य फर्म के मूल्य उद्देश्यों से प्रभावित होते है। उदाहरण :- छोटे अंतराल में अधिकतम लाभ

कमाने के लिए अधिकतम कीमत लेना। (2) वस्तु की लागत - मूल्यों की निमन्तम सीमाऐं निर्धारित करती है।

(3) बाजार में प्रतियोगिता की सीमा :- जब फर्म किसी प्रतियोगिता का सामना नहीं कर रही होती तो यह मूल्य निर्धारण करने में पूर्ण स्वतंत्रता का मजा ले सकती है।

(4) उपयोगिता एवं मांग :- अधिक मांग - अधिक कीमत

कभी-कभी - कम कीमत - अधिक मांग

यह उत्पाद की उपयोगिता पर निर्भर करती है।

स्थान मिश्रण/भौतिक वितरण मिश्रण :- निर्माता से उपभोक्ता तक वस्तुओं की भौतिक गतिशीलता से संबंधित सभी गति विधियां जैसे

(1) आदेश का प्रक्रियण :- ग्राहको के आर्डर को समय पर उपलब्ध करवाना जिससे व्यवसायिक लाभ एवं साख बढ़ेगी।

(2) परिवहन :- वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जहां इनकी आवश्यकता होती है पहुँचकर वस्तुओं की उपयोगिता में वृद्धि करता है।

(3) संग्रहित माल पर नियंत्रण :- स्टॉक में कितना माल हमेशा बनाए रखा जाए, यह वितरण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है तथा लागत एवं ग्राहक संतुष्टि में संतुलन बना रहें।

(4) भंडारण :-गोदाम संग्रहण की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न होती है क्योकि उत्पाद के उत्पादन समय तथा उपभोग के समय में बड़ा अंतर होता है।

वितरण माध्य

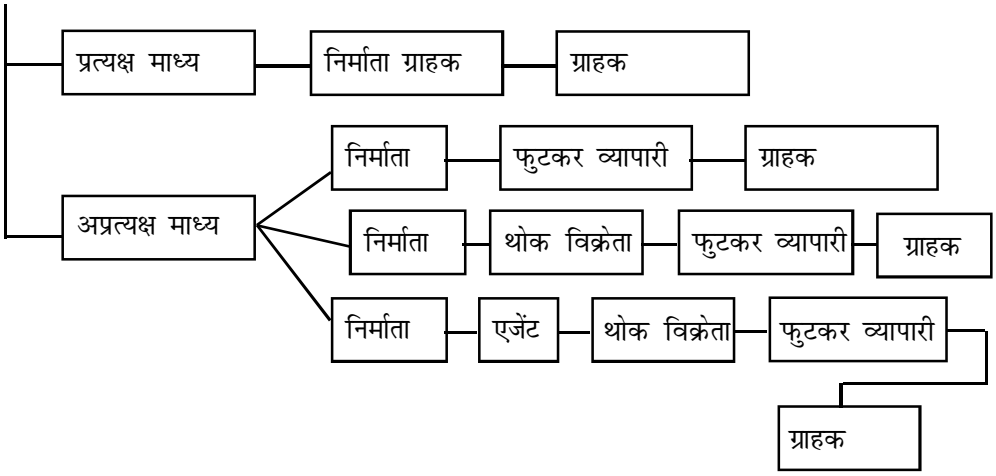

वितरण माध्य के चुनाव को निर्धारित करने वाले कारक :- वितरण माध्य चुनाव एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विपणन निर्णय है जो कि संगठन के निष्पादन को प्रभावित करता है कि एक संगठन प्रत्यक्ष विपणन स्रोत का चुनाव करेगा अथवा लम्बे स्रोतों का चुनाव करेगा जिसमें अनेक मध्यस्थ शामिल होंगे।

वितरण माध्य के चुनाव को प्रभावित करने वाले कारक

बाजार संबंधित कारक	उत्पाद संबंधित कारक	कंपनी संबंधी कारक
बाजार का आकार एवं प्रकृति	उत्पाद का इकाई मूल्य उत्पाद जटिलता	कम्पनी की वित्तीय शक्ति नियंत्रण का स्तर
भागौलिक सकेन्द्रण	उत्पाद की प्रकृति	प्रबंध
आदेशों का आकार	क्षयशील बनाम गैर क्षयशील उत्पाद	

संवर्धन मिश्रण/प्रवर्तन मिश्रण :-

विपणन कर्ता द्वारा संचार के विभिन्न उपकरण या तत्वों को अपने ग्राहकों को सूचना देने तथा उनसे आग्रह करने हेतु अपनाया जाता है।

उपकरण

1. विज्ञापन : संवर्द्धन का सर्वाधिक प्रभावी उपकरण माना जाता है। यह संचार का अवैयक्तिक रूप है जो विपणनकर्ता द्वारा अपने उत्पाद या सेवा के संवर्द्धन के लिए अपनाया जाता है। जिसके लिए भुगतान किया जाता है।

सर्वाधिक विधियाँ - समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, टेलीविजन, रेडियों

गुण :- (1) अधिक लोगों तक पहुँच - टी॰ वी व रेडियों

(2) चयन - लक्षित ग्राहकों को ध्यान में रखकर

सीमाएं :- (1) कमदबावकारी - अवैयक्तिक संचार होने के कारण

(2) प्रत्युत्तर की कमी

विज्ञापन स्रोतों को प्रभावित करने वाले कारक :-

(1) चुनाव योग्यता :- इसका तात्पर्य उन माध्यमों की योग्यता से है जो विशेष श्रोताओं तक पहुँचने की योग्यता रखते है।

(2) लागत :- विज्ञापन के लिये उपलब्ध कोषों की मात्रा

(3) निष्पादन :- माध्यमों का टिकाऊपन

2. विक्रय संवर्धन :- वह लघु आवधिक प्रेरक जो ग्राहकों को उत्पाद अथवा सेवाओं को तुरंत क्रय करने के लिए उकसाते है।

विक्रय संवर्धन की तकनीकें :-

(1) कटौती :- ज्यादा माल खत्म करने के लिए विशेष मूल्य पर उत्पाद प्रस्तावित करना।

(2) छूट :- मूल्यों पर छूट देकर क्रेताओं को ज्यादा क्रय करने के लिए प्रेरित करना।

(3) नमूनों का वितरण :- ग्राहक को मुफ्त नमूना देना, उसे उत्पाद का प्रयोग करने तथा उसका आदी हो जाने के लिए तैयार करना।

(4) लक्की ड्रा :- उदाहरण वस्त्रों के क्रय पर लक्की ड्रा के कूपन देना तथा कार जीतने का प्रस्ताव।

3. व्यक्तिगत विक्रय (वैयक्तिक विक्रय) :- बिक्री के उद्देश्य से एक या एक से अधिक संभावित ग्राहकों से बातचीत के रूप में संदेश का मौखिक प्रस्तुतिकरण समाहित है। यह सम्प्रेषण का व्यक्तिगत रूप है।

व्यक्तिगत विक्रय की भूमिका

(1) व्यवसाय के लिए महत्व :- संवर्धन की प्रभावी पद्धति है।

(2) ग्राहक के लिए महत्व :- बाजार के सम्बन्ध में नवीनतम जानकारी।

(3) समाज के लिए महत्व :- रोजगार के अवसर एवं उत्पाद का मानकीकरण

4. प्रचार

यह विज्ञापन की भांति है। यह सम्प्रेषण का अव्यक्तिगत रूप है। विज्ञापन की तुलना में यह सम्प्रेषण का गैर मौद्रिक रूप है। यदि एक निर्माता कार इंजन का निर्माण करता है जो कि पेट्रोल के बजाय पानी से चलती है तथा यह संदेश, टी॰ वी॰, रेडियो, अखबार द्वारा प्रसारित होता है तो इसे प्रचार कहा जाता है। क्योंकि इंजन निर्माता को कोई लागत लगाए बिना ही लाभ प्राप्त होता है।

लाभ :- जनता तक पहुँच, खबर की तरह फैलना

सीमाएँ :- यह फर्म के नियंत्रण में नही है।

विपणन प्रबंध के महत्वपूर्ण प्रश्न

1 अंक वाले प्रश्न

(1) विपणन मिश्रण का कोई एक घटक बताइए।

अध्याय 12

उपभोक्ता संरक्षण

परिचय

आधुनिक विपणन उपभोक्ता के साथ प्रारंभ होकर उपभोक्ता पर समाप्त हो जाता है। मुक्त अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता को राजा कहा जाता है। इसलिए यह अतिआवश्यक है कि उपभोक्ता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनका किसी प्रकार का शोषण होने से बचाना चाहिए।

उपभोक्ता संरक्षण का महत्व

(1) उपभोक्ता के दृष्टिकोण से :- भारत में निरक्षता का स्तर ऊंचा है उपभोक्ता शुद्ध तथा मिलावटी उत्पादों में अन्तर नही कर सकता।

- वे तत्व, तिथि, कीमत, मात्रा आदि को पढ़ नही पाते।

- वे अपने अधिकारों तथा विश्वासों की ओर से अंजान रहते है।

(2) उपभोक्ता का विस्तृत स्तर पर शोषण :- उपभोक्ताओं को विक्रेता की दोषपूर्ण गतिविधियों से सुरक्षा प्रदान कराने की आवश्यकता है।

(3) व्यवसाय के दृष्टिकोण से :-

(1) व्यवसाय की दीर्घ अवधिक हित :- वैश्वीकरण के पश्चात अब प्रतियोगिता विश्व स्तर की हो गई है। अतः व्यवसाय बाजार का बड़ा अंश केवल तभी जीता तथा हथियाया जा सकता है जब वे अपने उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपने उत्पाद का विकास करके उनकी आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सके।

(2) नैतिक औचित्य :- यह किसी भी व्यवसाय की नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह उपभोक्ता के हितों की रक्षा करे तथा किसी भी प्रकार के शोषण व्यावसायिक गतिविधियों, जैसे दोषपूर्ण तथा असुरक्षित उत्पाद, मिलावट, झूठ तथा धोखेबाज विज्ञापन इत्यादि से बचे।

उपभोक्ता को कानूनी संरक्षण :-

1. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 :- यह उपभोक्ता को छः अधिकार प्रदान करता है जो छोटे, बड़े, सरकारी, गैर सरकारी आदि सभी सैक्टर पर लागू होता है।

2. वस्तु विक्रय अधिनियम 1930 :- यह वस्तुओं के क्रेता को कुछ छूट तथा सुरक्षा कवच प्रदान करता है यदि क्रय की गई वस्तुएँ शर्तो तथा आश्वासनों से मेल नही खाती।

3. आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 :- इसका उद्देश्य उत्पादन नियंत्रण, मुद्रा-स्फीति की जाँच तथा आवश्यक वस्तुओं के समान वितरण को सुनिश्चित करना है।

4. खाद्य मिलावट अवरोध अधिनियम 1954 :- इसका उद्देश्य खाद्य पदार्थो में मिलावट की जांच करना तथा उनकी शुद्धता सुनिश्चित करना है ताकि स्वास्थय बनाए रखा जा सके।

5. मापतोल मानक अधिनियम 1976 :- यह अधिनियम वस्तुओं के कम तोल तथा कम माप जैसी गलत गतिविधियों के खिलाफ संरक्षण प्रदान करता है।

6. ट्रेड मार्क अधिनियम,1999 :- यह उपभोक्ताओं को उत्पादों पर धोखा देने वाले चिहनों से बचाता है। इस प्रकार यह उपभोक्ताओं को अच्छे उत्पादों के लिए संरक्षण प्रदान करता है।

7. भारती मानक ब्यूरो अधिनियम 1986 :- गुणवत्ता मानक, $\&\ B/S$ प्रमाण पत्र योजनाएं।

8. भारतीय प्रसंविदा अधिनियम, 1872 :- इसके अनुसार पार्टी वादा करती है कि वे एक दूसरे के साथ संविदा में बंधी है।

9. प्रतियोगिता अधिनियम, 2002 :- यदि व्यवसायी बाजार में प्रतियोगी गतिविधियों को प्रभावित करते है तो यह अधिनियम उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान करता है।

10. कृषि उत्पाद (श्रेणीकरण एवं चिह्नांकन) अधिनियम, 1937 :- यह श्रेणीकरण, चिह्नीकरण एवं कृषि उत्पादों के पैकिंग की प्रक्रिया को संपादित करने के नियम बनाता है।

गुणवत्ता चिन्ह ''एगमार्क'' कहलाता है।

उपभोक्ता के अधिकार :- यह उपभोक्ताओं को छः अधिकार उपलब्ध करवाता है।

(1) सुरक्षा अधिकार :- स्वास्थय के लिए हानिकारक उत्पादों, उत्पादन प्रक्रिया तथा सेवाओं के विरूद्ध संरक्षण प्राप्त करना। (उदाहरण आईएसआई चिन्ह वाले बिजली के उपकरणो का उपयोग)।

(2) सूचना प्राप्त करने का अधिकार :- उपभोक्ता का वस्तुओं एवं सेवाओं की गुणवत्ता आदि के संबंध में पूर्ण सूचना प्राप्त करना ताकि वह खरीदने से पूर्व ठीक नियंत्रण ले सके।

(3) चुनाव/चयन का अधिकार :- उपभोक्ता को विस्तृत श्रेणी उपलब्ध करवाकर इस बात की इजाजत कि वह इनमें से चुनाव कर सके।

(4) शिकायत का अधिकार :- उपभोक्ता का अधिकार है कि वह विशेष वस्तुओं अथवा सेवाओं से असंतुष्ट होने की स्थिति में शिकायत दर्ज कर सके।

(5) क्षतिपूर्ति का अधिकार :- उपभोक्ता के पास अधिकार है। कि यदि वस्तुएँ अथवा सेवाएँ उनकी उम्मीदों पर खरी नही उतरती तो वह हरजाना प्राप्त कर सकता है।

(6) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार :- उपभोक्ता को आजीवन भली प्रकार सूचना प्राप्त करने तथा जानकारी प्राप्त करने का अधिकार/इग्नू ने उपभोक्ता संरक्षण पर दूरस्थ पाठ्यक्रम प्रारंभ किया है।

उपभोक्ता के दायित्व/जिम्मेदारी

(1) उपभोक्ता को अपने अधिकारो का उपयोग करना चाहिए :-उपभोक्ता को बाजार से क्रय की गई वस्तुओं अथवा सेवाओं के संबंध में अपने अधिकारों की जानकारी होनी चाहिए।

(2) उपभोक्ता को सावधान उपभोक्ता होना चाहिए :- उत्पाद अथवा सेवाएं क्रय करते समय उपभोक्ता

को लेबल ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए।

(3) उपभोक्ता को शिकायत अवश्य दर्ज करवानी चाहिए :- प्राप्त की गई किसी वस्तु अथवा सेवा में कमी निकलने पर उपभोक्ता को उपयुक्त फोरम में अपनी शिकायत अवश्य दर्ज करवानी चाहिए।

(4) उपभोक्ता को कैश मीमो पर जोर देना चाहिए जो कि क्रय का सबूत होता है।

(5) उपभोक्ता को गुणवत्ता जागरूक होना चाहिए :- उपभोक्ता को केवल मानक वस्तुएँ जैसे बिजली के उपकरण पर चिन्ह, खाद्य उत्पादों पर एफपीओ तथा गहनो पर हालमार्क का चिन्ह आदि देख लेना चाहिए।

(6) उपभोक्ता को विज्ञापन में विभिन्नता को विज्ञापनदाता को सूचित करना चाहिए।

उपभोक्ता संरक्षण के तरीके एवं साधन

(1) सरकार :- सरकार विभिन्न प्रावधान बनाकर उपभोक्ताओं का हित संरक्षित करती है। जैसे उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम, 1986 वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 भारती मानक अधिनियम ब्यूरो 1986 आदि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता की शिकायत पर हर्जाना दिलवाने का त्रिपक्षीय तंत्र है।

(2) उपभोक्ता संगठन :- ये संगठन व्यवसायों पर दबाव बना सकते है कि गलत क्रियाविधियों तथा उपभोक्ताओं के शोषण से दूर रहें। उदाहरण

1. उपभोक्ता समन्वय परिषद्, दिल्ली
2. सामान्य निमित दिल्ली
3. उपभोक्ता संघ कोलकता
4. मुंबई ग्राहक पंचायत, मुंबई आदि।

(3) व्यवसायिक संगठन :- व्यापार, वाणिज्य एवं कारोबार का संघ जैसे भारतीय वाणिज्य मंडल का महासंघ तथा भारतीय उद्यम परिसंघ ने अपने सदस्यों के लिए ग्राहकों से व्यवहार करने के लिए आचार संहिता लागू की है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 की विशेषताएं तथा प्रावधान

(अ) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 क्यों लागू किया गया?

- उपभोक्ता अधिकारों (सभी छः अधिकार) को मान्यता दिलवाकर उपभोक्ता के हितों का संरक्षण तथा संवर्धन करता है।

(ब) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अनुसार उपभोक्ता कौन है?

- वह व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले कोई माल खरीदता है।
- वह व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले किन्ही सेवाओं को भाड़े पर प्राप्त करता है।
- वह व्यक्ति सम्मिलित नही है जो वस्तुओं/सेवाओं को किसी व्यापार के उद्देश्यों से प्राप्त करता है।

(स) किन परिस्थितियों में शिकायत दर्ज करवाई जा सकती है :-

- व्यापारी तथा निर्माता धोखाधड़ी की गतिविधियाँ करते है।
- यदि वस्तुएँ दोषपूर्ण है।
- यदि किराए पर ली गई सेवाओं में कोई कमी है।

(द) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत उपचार एजेंसियां

- जिला फोरम
- राज्य कमीशन
- राष्ट्रीय कमीशन

(य) किस अंतराल के अंतर्गत शिकायत दर्ज करवाई जानी चाहिए?

शिकायत तीन माह के भीतर दर्ज करवा देनी चाहिए। यदि किसी परीक्षण की आवश्यकता हो तो पाँच माह में भी दर्ज करवा सकते है।

(र) शिकायत कौन दर्ज करवा सकता है?

- कोई उपभोक्ता
- कोई मान्य उपभोक्ता संघ
- केन्द्रीय सरकार अथवा कोई राज्य सरकार
- पीड़ित उपभोक्ता का कानूनी उत्तराधिकारी अथवा प्रतिनिधि उपभोक्ता संगठनों तथा एनजीओएस की भूमिका
- प्रशिक्षण कार्यक्रम, सेमिनार तथा कार्यशाला आयोजित करके आम जनता को उपभोक्ता अधिकारों के संबंध में शिक्षा देना।
- इस संबंध में प्रकाशन तथा पत्रिकाएं जारी करना।
- उपयुक्त उपभोक्ता न्यायालय में उपभोक्ता की ओर से शिकायत दर्ज करना।
- निकृष्ट, मिलावटी पदार्थो इत्यादि के खिलाफ जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से प्रदर्शनी आयोजित करना।

मुख्य प्रश्न

1. अंक वाले प्रश्न

(1) उपभोक्ता संरक्षण का क्षेत्र क्या है?

(2) उपभोक्ता के शोषण के कोई दो उदाहरण दीजिए?

(3) भारत सरकार द्वारा पारित दो प्रावधान दीजिए जो उपभोक्ताओं के हितो के संरक्षण में सहायता करते है।

(4) उपभोक्ता शिकायतों के हल हेतु किस प्रकार की न्यायिक मशीनरी उपलब्ध है?

(5) सोने की शुद्धता एवं खाद्य पदार्थो के लिए प्रमाणित चिन्ह लिखिए?

3 एवं 4 अंक वाले प्रश्न

(6) उपभोक्ता संरक्षण में महाविद्यालयों एवं विद्यालयों की भूमिका का वर्णन कीजिए?

(7) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के महत्व पर प्रकाश डालिए।

5 एवं 6 अंक वाले प्रश्न

(8) उपभोक्ता संरक्षण के अंतर्गत उपभोक्ता संगठनों तथा गैर-सरकारी संगठनों के कोई छः कार्यो की व्याख्या कीजिए।

(9) उपभोक्ता के हितों में मान्य छह अधिकारों की व्याख्या कीजिए।

(10) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत उपभोक्ताओं को उपलब्ध उपचारों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न पत्र

(मॉडल सैम्पल पेपर)

समय : 3 घण्टा

(1) नियोजन के किस प्रकार में प्रतियोगियों की चाल को ध्यान में रखा जाता है। (1)

(2) उस संगठन का नाम बताइए जिसकी 'परिवर्तन के विरोध की सीमा है। (1)

(3) चयन को नकारात्मक प्रक्रिया क्यों कहा जाता है? (1)

(4) प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य कौन सा है? (1)

(5) नियन्त्रण प्रक्रिया का अन्तिम चरण लिखिए (1)

(6) बजटीय नियंत्रण क्या है? (1)

(7) उस अवधारणा का नाम बताइए जिसके कारण पूँजी संरचना में परिवर्तन करके समता अंशो की आय की दर बढ़ जाती है। (1)

(8) एबी लि॰ ने अपने प्रत्येक 10 रू. वाले समता अंशो को 12 रू. प्रति अंश के हिसाब से निवेश बैंको को बेचा जिसने 20 रू. प्रति अंश की दर से सार्वजनिक निर्गमन का प्रस्ताव किया। चलायमान की इस विधि को बताइए। (1)

(9) भारत में प्रतिभूति बाजार का रखवाला कौन कहलाता है? (1)

(10) कौन सा उपभोक्ता अधिकार व्यावसायिक फर्मो को उपभोक्ता सेवा एवं पीड़ा विभाग स्थापित करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है? (1)

(11) यदि किसी क्रिया में से प्रबन्ध को घटा दे तो शेष कुछ नही बचता। यह कथन प्रबन्ध के विषय में क्या बताता है? वर्णन कीजिए (3)

(12) प्रबन्ध के निम्नलिखित सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए

(क) निर्देश की एकता (ख) सहयोग की भावना (ग) पहल-क्षमता (3)

(13) अधिकार का अंतरण किया जा सकता है? परन्तु उत्तरदेयता का नही। इस कथन की व्याख्या कीजिए (3)

(14) प्रशिक्षण और विकास में तीन अन्तर लिखिए? (3)

(15) पैकेजिंग के किन्हीं तीन कार्यो का संक्षिप्त वर्णन कीजिए? (3)

(16) प्रबन्ध को कला तथा विज्ञान दोनों के रूप में माना जाता है। वर्णन कीजिए? (4)

(17) वैज्ञानिक प्रबन्ध की 'क्रियात्मक फोरमैनशिप तथा कार्य का प्रमापीकरण' तकनीकों का वर्णन कीजिए। (4)

(18) कर्मचारियों की चुनाव प्रक्रिया में निहित चरणों की व्याख्या कीजिए। (4)

(19) दो मौद्रिक वित्तीय तथा दो अमौद्रिक प्रेरणाओं का वर्णन कीजिए। (4)

(20) नियोजन तथा नियन्त्रण एक दूसरे से कैसे संबंधित है? वर्णन कीजिए। (4)

(21) सरकारी नीति में परिवर्तन के कारण व्यवसाय एवं उद्योग पर पड़ने वाले पाँच प्रभावों का वर्णन कीजिए। (5)

(22) प्रबन्धकों के अच्छे प्रयास करने पर भी कभी-2 नियोजन इसकी सीमाओं के कारण वांछित परिणाम प्राप्त करने में असफल रहता है। नियोजन की पाँच सीमाओं की व्याख्या कीजिए। (5)

(23) एक संस्था के लाभांश निर्णय को प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए। (5)

(24) ''विज्ञापन लागतें ऊंची कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं को हस्तान्तरित कर दी जाती है तथा कुछ विज्ञापन रूचिकर नही होते है। क्या आप सहमत है? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए। (5)

(25) उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में काम करने वाले संगठनों द्वारा किए जाने वाले कोई पाँच कार्य बताइए। (5)

(26) कार्यात्मक संगठन ढांचा क्या है? इसके दो लाभो तथा दो सीमाओं का वर्णन कीजिए।(6)

या

औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में कोई छः अन्तर कीजिए।

(27) अच्छा तथा प्रभावी निर्देशन कुछ सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। निर्देशन के किन्ही छः सिद्धान्तो का वर्णन कीजिए?

या

प्रभावशाली संदेशवाहन की विभिन्न बाधाओं का वर्णन कीजिए (6)

(28) पूँजी संरचना से क्या अभिप्राय है? इसे प्रभावित करने वाले पाँच कारको का वर्णन कीजिए? (6)

या

निम्नलिखित निर्माणी उपक्रम में कार्यशीलपूँजी की आवश्यकता पर सुझाव दीजिए?

(क) ब्रेड (ख) चीनी (ग) कूलर (घ) मोटरकार (च) लोकोमोटिव (छ) विशिष्ट आदेश पर निर्मित फर्नीचर

(29) सेबी के तीन विनियामक तथा तीन संरक्षणात्मक कार्य बताइए?

या

पूँजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में निम्न के आधार पर अन्तर कीजिए।

(क) सहभागी (ख) मुख्य प्रपत्र (ग) परिपक्वता अवधि (घ) संभावित प्रतिफल (च) सुरक्षा (छ) तरलता

(30) यह आवश्यक है कि वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपभोक्ताओं को ठीक स्थान, ठीक मात्रा व(6) ठीक समय पर उपलब्ध हो।

(क) संबंधित विपणन मिश्रण के तत्व का नाम बताएँ तथा वर्णन करें।

(ख) इस तत्व के अंगों का वर्णन करें।

या

विक्रय संवर्द्धन की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिए (कोई छः)